तेवर

(काव्य संग्रह)

मुख्य–सम्पादक

प्रेम प्रकाश मिश्र 'रोशन' कानपुरी

सह-सम्पादक

महेन्द्र 'नेह' • अरविंद सोरल • मनोज मिश्रा • रमेश शर्मा
हरि भक्त • अब्दुल शकूर 'अनवर' • अमीन 'निशाती'

हिन्दी, उर्दू एवं हाड़ौती का सांस्कृतिक समन्वय मंच
* कोटा (राजस्थान) *

सितम्बर, १६७८

समर्पित

दुनियाँ के उन महान साहित्यकारों को जिन्होंने मानव-मुक्ति
के न्यायपूर्ण सघर्षों मे अपने प्राण न्यौछावर कर दिये
तथा जो आज भी 'अभिव्यक्ति के सभी खतरे'
उठाकर जन-गण की आशाओं, आकांक्षाओं
एव जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्ति
दे रहे है!

• सहयोग राशि •
सोलह रुपये

• आवरण •
सत्यदेव सत्यार्थी

प्रेम प्रकाश मिश्रा द्वारा सर्वेश्वर प्रिण्टर्स, जयपुर-३०२ ००३ मे मुद्रित और इन्ही
के द्वारा २८, जे. के. नगर, कोटा-३२४ ००३ (राजस्थान) मे प्रकाशित।

भूमिका

संगम : एक विकास-यात्रा

उत्तर भारत के तमाम नगरों के साहित्यिक वातावरण में परिवर्तन की एक प्रक्रिया घटित हो रही है। एक ओर संकीर्ण गुटो और गिरोहो मे बँधे कुछ प्रतिष्ठानी साहित्यकार हैं जिनका मुख्य कर्म व्यावसायिक व सरकारी प्रतिष्ठानो, अकादमियो, शोध-प्रतिष्ठानो, प्रकाशन गृहों के मालिकों, सत्ताधारी राजनीतिज्ञो एव भ्रष्ट नौकरशाही से साँठ-गाँठ कर रॉयल्टियाँ, पद, पुरुस्कार व अधिकाधिक मुद्रा-लाभ अर्जित करना है। लेखन के क्षेत्र में ये साहित्यकार यथास्थितिवादी, जडतावादी एव बाजारू मूल्यों के पोषक हैं। दूसरी ओर युवा-रचनाकारो की एक ऐसी जमात उभर रही है जो ईमानदार रचना-कर्म की राह मे आने वाली सभी सुविधाओं को ठुकराने को तैयार है और वर्तमान जन-विरोधी व्यवस्था से जिन्हें किसी भी तरह का समझौता मंजूर नही है। निश्चय ही साहित्यकारों की यह जमात सारी दुनियाँ मे शोषण, उत्पीडन एव दमन के विरुद्ध चल रही मानव-मुक्ति की लड़ाई की पक्षधर है तथा प्रगतिशील एवं जनवादी मूल्यों की पोषक है। प्रतिष्ठानी साहित्यकारों द्वारा अभिव्यक्ति के सभी माध्यमो पर अपना आधिपत्य स्थापित कर साहित्यकारो की इस मुक्ति-कामी जमात की उपेक्षा स्वाभाविक है, लेकिन पुराने और नये के इस द्वन्द, मूल्यों, दृष्टिकोण एवं विचारो की इस टकराहट ने अनेकों नई-नई साहित्यिक संस्थाओं, मंचो एवं आन्दोलनों को जन्म दिया है। विशेष रूप से हिन्दी के लघु-पत्रिका आन्दोलन ने यह सिद्ध कर दिया है कि जनवादी लेखन धारा अपनी रचनात्मक श्रेष्ठता मे प्रतिष्ठानी लेखन से बहुत आगे बढ़ गई है। साहित्यिक वातावरण में परिवर्त्तन की उपरोक्त प्रक्रिया जन-आन्दोलनों एवं जन-चेतना के अनुरूप कही धीमी कही तेज है। संगम के जन्म और विकास की कहानी भी नये और पुराने की टकराहट तथा परिवर्तन की इस प्रक्रिया की ही स्वाभाविक परिणति है।

प्रारम्भ

१९७६ के नवम्बर माह की एक शाम। मौसम अपने मे बहुत सभावनाये समेटे पख पसार रहा था। ऐसे माहौल मे अनेको सवाल हमारे जेहन मे घुमड रहे थे और हम होठो पर लाने से पहले उनका औचित्य तौल रहे थे। शहर की तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियाँ (?) हमारी चर्चा का मुख्य विषय थी। चर्चा के बीच एक प्रश्न उठा था, क्या कोई ऐसा साहित्यिक मच है जहाँ सकीर्ण अखाडेबाजियों से अलग साहित्य के बारे मे औपचारिक से लेकर अनौपचारिक तमाम पहलुओ पर बातें हो सकें ?

यह सयोग की ही बात है कि 'सगम' का जन्म ऐसे समय मे हुआ जब देश की तमाम जनता के सिर पर 'आपातकाल' का खंजर लटका हुआ था। नगर के बाजारू साहित्यकार चारण-कर्म मे निमग्न थे। ईमानदार कवि-लेखक 'सेन्सरशिप' के आघात से आहत थे और यथार्थ को स्वर देने के प्रयत्नों मे लगे थे।

हम मिले, कविता पाठ हुआ, कविता और मच को लेकर चर्चा हुई और निर्णय लिया गया कि प्रत्येक शनिवार की शाम को हम मिल कर बैठा करें। धीरे-धीरे स्वाभाविक रूप से संगम का स्वरूप उभरने लगा। सामूहिक भावना और प्रयत्नों की एकता को विकसित करने के लिए हमने अनायास ही एक प्रयोग प्रारम्भ किया कि प्रत्येक शनिवार को किसी एक ही स्थान पर मिलने की जडता को तोडकर किसी भी एक साथी रचनाकार के निवास पर मिला जाये। और इस तरह संगम के तत्वाधान मे शनिवारीय गोष्ठियो की एक गतिशील परम्परा का निर्माण हुआ। साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण लेकिन बाहरी दिखावट से मुक्त, इन गोष्ठियो मे हिन्दी-उर्दू एव हाडौती भाषा के युवा रचनाकारो की सख्या बढ़ती गयी। इससे शनिवारीय गोष्ठियो की सार्थकता प्रमाणित हुई, साथ ही शहर की साहित्यिक गतिविधियों मे तेजी से बदलाव भी आया।

उनका स्नेह : उनका कोप

संगम की गोष्ठियो मे नगर के प्रतिष्ठित एव अप्रतिष्ठित, नये-पुराने तमाम साहित्यकारो की भागीदारी बढ़ती गई और शनिवारीय गोष्ठियाँ वृहत् सम्मेलनों जैसा रूप ग्रहण करने लगी। निश्चय ही अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकारो ने संगम को खुले मन से सहयोग-स्नेह दिया, जो आज भी प्राप्त है। लेकिन, अनेक साहित्यिक महन्तो-मठाधीशों ने संगम को अपनी व्यक्तिगत महत्वा-

कांक्षाओ की पूर्ति का माध्यम बनाने की घिनौनी कोशिशें प्रारम्भ कर दी। चूँकि हम अधिसख्य युवा-रचनाकार साहित्य के यथास्थितिवादी जड ढांचे को तोडने के लिए कटिबद्ध थे तथा अपने विकास-क्रम मे लेखकीय दायित्वो के प्रति सजग होते जा रहे थे—महन्तों-मठाधीशो की कुटिल चालें, स्वार्थ मे डूबे मसूबे और जोड-तोड़ के षड्यंत्र कामयाब न हो सके।

संगम की गतिविधियाँ उत्तरोत्तर तेज होती गई। जब तथाकथित बड़े साहित्यकार संगम मे रहकर अपने क्षुद्र स्वार्थो की रोटियाँ न सेंक सके तो वे पुन अपने पुराने खेमो मे लौट कर पुरानी दफ्न सस्थाओं को जिन्दा करने मे लग गये। यह प्रसन्नता की बात होती यदि उनकी इस सजगता के कुछ सार्थक परिणाम आये होते लेकिन अफसोस है कि वे साहित्यिक साधना के नाम पर उन साहित्यिक मूल्यों और परम्पराओ को जिंदा करने के प्रयत्नो मे जुटे हैं जो या तो बीसियो वर्ष पहले हिन्दुस्तान के अधिकाश जागरूक कवियो-शायरो द्वारा ठुकराये जा चुके हैं या वर्तमान समय मे पूरी तरह अनुपयुक्त होने के कारण स्वत. ही दम तोड रहे है।

मूल्यों की लड़ाई

अपनी तमाम सदाशयता के बावजूद हम यह मानते है कि नगर के साहित्यिक महन्तो-मठाधीशों से संगम की टकराहट अपरिहार्य थी। सदिच्छाओं से उसे टाला नही जा सकता था। क्योकि वह नये और पुराने मूल्यो और विचारों की टकराहट थी। साहित्य के बदलते हुए तेवर और यथास्थितिवाद के बीच की टकराहट थी। पहाडों को काटती—बढती नदी और ठहरे हुए गँदले पानी के बीच का द्वन्द था। हम ऐसा नहीं मानते कि शहर की सभी साहित्यिक सस्थाये जडतावादी हैं और प्रगति के रथ की लगाम सिर्फ हमारे ही हाथो में है। हम विनम्रतापूर्वक विश्व सस्कृति की श्रेष्ठ परम्पराओ को सुरक्षित रखने और आगे बढाने में आस्था रखते है। हम जानते है कि शहर मे हमारे अनेक हमसफर साथी साहित्यकार हैं जो अलग अलग या सस्थाओं मे रहते हुए भी मूल्यो एवं विचारो की लडाई मे जनतांत्रिक एवं प्रगतिशील भूमिका निभा रहे है, लेकिन मुख्यतः युवा-सर्जकों की सस्था होने के कारण संगम की जिम्मेदारी स्वतः ही सर्वाधिक बढ जाती है। इस जिम्मेदारी के अहसास के कारण ही संगम ने शनिवारीय गोष्ठियों से आगे बढ़ कर बुनियादी महत्त्व के कुछ काम करने का निश्चय किया।

क्षेत्रीय रचनाकार सम्मेलन

एक ओर संगम के मंच पर 'कैफ़' भोपाली, 'आलम' फतेहपुरी, अब्दुल मतीन 'नियाज', 'रईस' रामपुरी जैसे देश के ख्यातिनामा शायरो ने काव्य-पाठ कर अनेक हिन्दी रचनाकारो को उर्दू की विविध विधाओं एव उन की शिल्पगत विशेषताओं से परिचित कराया तो दूसरी ओर श्री हर्ष (कलकत्ता), वृजेन्द्र कौशिक (अलवर) एव रमेश रजक (दिल्ली) जैसे कवियो-गीतकारो ने कविता के नये प्रतिमान प्रस्तुत कर आधुनिक कविता के सबसे आगे बढे हुए कथ्य एव शिल्प से हमें जोड़ कर महत्त्वपूर्ण मदद की तथा रचना-ससार के नये क्षितिजो को हमारे सम्मुख खोला।

इसी क्रम मे संगम ने २७–२८ मई, १९७८ को हाड़ौती-क्षेत्र के जागरूक एव प्रगतिशील रचनाकारो को एकजुट करने तथा साहित्य की प्रतिनिधि जनवादी धारा से जोडने के उद्देश्य से क्षेत्रीय-रचनाकार सम्मेलन किया। इस सम्मेलन मे हाड़ौती क्षेत्र के लगभग साठ साहित्यकारों ने बेहद रुचि से हिस्सा लिया तथा सम्मेलन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों की सार्थकता का सभी को खुले हृदय से अहसास हुआ। सम्मेलन में भाग लेने के लिए देश के महत्वपूर्ण साहित्यकार सुधीश पचौरी (दिल्ली), सव्यसाची (मथुरा), डा० ओम प्रकाश ग्रेवाल (रोहतक), रमेश शर्मा (रतलाम), ऋतुराज (स० माधोपुर), जवरीमल पारख (जोधपुर), डा० राजेन्द्रकुमार (इलाहाबाद) एव डा० अबुल फैज़ उस्मानी (टौंक) आदि उपस्थित हुए। क्षेत्रीय रचनाकार सम्मेलन ने संगम को न केवल गरिमा ही प्रदान की बल्कि साहित्य के बारे मे हमारी समझ को विकसित करने मे बेहद महत्वपूर्ण योगदान दिया।

●●●

तेवर

क्षेत्रीय रचनाकार सम्मेलन के साथ ही **संगम** ने एक और बुनियादी दायित्व अपने कन्धों पर लिया था—एक प्रकाशन योजना जिसके जरिये न केवल **संगम** के मंच पर एकत्रित तमाम कवि एव शायर साथियो की महत्वपूर्ण कवितायें प्रकाशित की जायें, साथ ही वर्तमान जीवन की समस्याओं तथा मेहनतकश जन-गण के प्रति अपना दायित्व समझने की एक सामूहिक निष्ठा का सूत्रपात किया जाये।

तेवर में चूंकि एकदम नवांकुर रचनाकारो से लेकर प्रौढ साहित्यकारों तक को एक ही कड़ी में पिरोने का यत्न किया गया है अत. भाषा, विचार, चेतना, कथ्य तथा शिल्प के अनेक स्तर इसमें एक साथ देखने को मिलेंगे। जैसा कि हमने कहा है कि **संगम** ऊर्ध्वगामी-प्रगतिशील मूल्यों की सवाहक संस्था के रूप मे विकास कर रही है, इस सग्रह की बहुत सी कविताओ के बारे मे अनेक पाठकों को ऐतराज हो सकता है कि उनमे एकदम विपरीत मूल्यो की छायाएँ है। विशेष रूप से इस सग्रह की कुछ रचनाओ के विषय मे कहा जा सकता है कि उनमें या तो परम्परागत अधविश्वास, निराशा, दैन्य, दुर्बलताओं और भाग्यवाद के स्वर है या फिर हुस्नो-इश्क की अवास्तविक तथा काल्पनिक दुनियाँ की तस्वीरें है। लेकिन इसके लिये इस सग्रह मे प्रकाशित रचनाकारो को दोषी नही ठहराया जा सकता। बल्कि, इसके लिए मूलत दोषी वे व्यवस्थागत सामाजिक स्थितियाँ है जिनके शिकार इस सग्रह मे प्रकाशित हमारे रचनाकार साथी है। इसके लिए दोषी हमारे देश की पूंजीवादी सत्ता है जिसने उन्हें आर्थिक उत्पीडन के शिकजे में जकड़कर सामाजिक और नैतिक अवमानता की वादियों मे धकेल कर आत्मग्रस्त मानसिकता को ढोने के लिए विवश कर दिया है। इसके लिए दोषी धर्म की वह 'रूहानी शराब' है, लेनिन के शब्दो मे—**"जिसके नशे में पूंजी के गुलाम अपनी इन्सानी हैसियत और इन्सान के योग्य जिन्दगी बसर करने की ख्वाहिश तक डुबो देते है।"** लेकिन **तेवर** को बिना किसी तर्क-संगत विचार या पिछड़े दृष्टिकोण से प्रकाशित सामान्य सग्रहो की कोटि मे नही रखा जा सकता।

दरअसल, इस संग्रह की कवितायें कोटा के साहित्यकारों के सृजन में आ रहे महत्वपूर्ण परिवर्तनों की प्रतिष्ठा सूक्तियाँ है। किसी युग के एक विशिष्ट दौर में साहित्य मे जो बदलाव आता है, इस संग्रह मे उसके जीवन्त सकेत हैं और यही **तेवर** के प्रकाशन के लिए किये गये श्रम की सार्थकता का

सबूत है। किस तरह एक पूरी पीढ़ी मिथकों के ससार से यथार्थ की दुनियाँ मे प्रवेश करती है तेवर की कविताओ मे इस प्रक्रिया की अनुगूंज है। एक विचार या सस्कार को मिटने मे होने वाली तक़लीफें तथा दूसरे नये विचार और सस्कार के बनने में पैदा होने वाली कष्ट साध्य स्थितिगत प्रक्रिया इन कविताओ मे सर्वत्र देखने को मिलेगी, और यही इस संग्रह की महत्वपूर्ण विशेषता है। यदि तेवर की कविताओ को समग्र रूप मे देखा जाये तो यह साफ है कि इस सग्रह के कवियो का अतीत से मोह भग हो रहा है, वे वर्तमान से बेहद क्षुब्ध, क्रुद्ध या निराश है, लेकिन भविष्य के प्रति भी कम आशान्वित नही है। बल्कि अनेक कविताओ मे हमे लगता है कि उनकी कवितायें न केवल एक उज्वल भविष्य की ओर ही सकेत कर रही हैं बल्कि कवि स्वय परिवर्तनकारी और मुक्ति-कामी समूह के अग बनकर एक नये क्रान्तिकारी भविष्य को गढने में जुटे है—पूरी निष्ठा, उत्सर्ग एवं आत्म-विश्वास के साथ।

इस सग्रह की बडी उपादेयता यह भी है कि एक ओर साहित्य के सुरुचिसम्पन्न अध्येता यह जान सकेंगे कि देश के एक अचल के रचनाकार लेखन के किस दौर मे है, वही इस सग्रह मे प्रकाशित साहित्यकार अपना आत्म-निरीक्षण भी कर सकेंगे। ईमानदारी से किया गया आत्म-साक्षात्कार या आत्मालोचना भी किसी इकाई या समूह के विकास की अनिवार्य शर्त है।

आभार प्रदर्शन

किसी भी सामूहिक कर्म की तरह तेवर के प्रकाशित होने मे अनेक साथियो का श्रम व सहयोग है। उन साहित्यकार साथियों का भी जिन्होंने अपनी मूल्यवान रचनायें इस सग्रह के लिए दी तथा उन साथियो-श्रमिकों का जिन्होंने रचनाओं को वर्गीकृत किया, पाण्डुलिपि तैयार की तथा इन्हें सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रकाशित करने में श्रम किया। विशेष रूप से हम सर्वाधिक आभारी साथी रामपाल (किताब घर, जयपुर) के है जिन्होंने प्रकाशन-कार्य मे सक्रिय योगदान दिया एवं अपने उन सहयोगियो के है, जिन्होंने संग्रह प्रकाशित करने के लिए संगम को आर्थिक सहयोग दिया क्योंकि इस सहयोग के बग़ैर इतनी शीघ्र तेवर का प्रकाशित होना असभव तो नहीं लेकिन कठिन अवश्य था।

हम आशा करते हैं कि संगम को अपने साथियों एवं सहयोगियों का योगदान आगे भी इसी तत्परता एवं उत्साह के साथ मिलता रहेगा।

●●●

अनुक्रम

हिन्दी रचनाकार पृष्ठ

उर्दू रचनाकार

हाड़ौती रचनाकार

•••

बशीर अहमद 'मयूख'

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त साहित्यकार एवं विचारक । अधुना स्वतंत्र लेखन और समाज चिंता ।

हिन्दी काव्य के क्षेत्र मे सन्तुलित सामाजिक विचारधारा और तीक्ष्ण दृष्टिवाला एक प्रमुख हस्ताक्षर ।

वेदों का सरल काव्यानुवाद करके आपने एक बहुत पुराने 'मिथ' को तोड़ दिया है। राष्ट्रीय एकता के पुरस्कार से अलंकृत एव अपनी साहित्यिक सेवाओ के लिए प्रशसित 'मयूख' जी हिन्दी की अनेकानेक गौरवशाली संस्थाओं से सम्बद्ध हैं ।

'स्वर्ण-रेख' तथा 'अर्हंत' प्रकाशित ।

युद्ध

मैने पढ़े हैं
अनास्तित्वी द्वारों पर अंकित
वर्जनीय निषेध
देखे हैं
अनिर्दिष्ट संधानों को गमित,
दिग्भ्रमित । इ गित
सुने है
अर्थहीन अभिव्यक्ति की
समर्थ व्याख्याओ के शोर
सूर्य के रश्मि-रथ की ओर उन्मुख
अंधेरे–अभियानों के जोर
सबसे अवगत
एक अजन्मा स्वप्न !
दिशाओ पर घटाटोप
'ईव' की कोख का अंधकार

अपारदर्शी दीवारो मे कैद
आदम के गोरे-काले बेटे
धर्म का स्थानापन्न खूनी देवता
राष्ट्र
स्वर्ण का पर्याय
रक्त
इन सबके पीछे—युद्ध
बाँझ सम्भावनाओं का नपुंसक व्यभिचार
युद्ध

शून्य के सीमांकन मे
सचरणरत उपग्रह
ज्ञान की आंतिक उपलब्धि मे व्यस्त
विज्ञान
इन सबके पीछे–युद्ध
स्थितियो का नकारात्मक निर्देश
युद्ध

दृष्टि देखती है
अपारदर्शी दीवारो के पार
सूर्य के रश्मिरथ से कुचला
मरणमुखी तम
स्वर्ण का पर्याय
श्रम
राष्ट्र के स्थानापन्न
जन
दृष्टि देखती है। रेखाओं को तोड़ते मनु के गोरे-काले बेटे

शास्ताओ! सुनो!!
प्रबुद्ध कलमों ने
बारूद से बगावत करने वाली स्याही भरली है
रेखाओं को कैद से मुक्त
वर्जित द्वार विलुप्त

सुनो, शास्ताओ !
मरघटी सन्नाटो को चीरती
नये स्वप्न के जन्म की आहट
प्रतीक्षा रत है
अनुपलब्ध विजय के अघोषित तूर्य
एक अजन्मा स्वप्न !

•

बुद्धि जीवियों का कत्ल

और फिर उस दिन
अनेक अनाम सूर्य
इतिहास के बदनाम अंधेरो मे कौंध गये

चैतन्य हवाएं
अपनी छाती पर सलीब उकेरती
मुर्दा घर को रौशनदान से गुजरी
नजरूल की नज्मे
रवीन्द्र संगीत
पद्मा के होठो से निकले
रौशनी के गीत

सूली पर चढ़ गये !

और फिर उस दिन
जो कयामत का दिन पुकारा गया
'उसकी' इजलास लगी
'उस' ने देखा
मुलजिम के कटघरे मे
'वह' खड़ा था

मित्रो !

नही जाती यह सड़क सिर्फ
सुकरात के होठो से/गाँधी के सीने तक

• • •

जगदीश विमल 'गुलकंद'

जन्म—१५ सितम्बर, १९२३
शिक्षा—एम. ए.
सम्प्रति राजकीय हायर सैकेण्डरी स्कूल, कोटा में वरिष्ठ अध्यापक

'गुलकंद' के नाम से प्रसिद्ध श्री जगदीश विमल इस क्षेत्र के वरिष्ठतम रचनाकारों में से है। चिन्तन में प्रबुद्ध एवं जीवन में एक योद्धा की तरह विजयी विमल जी अपने स्वभाव से एकदम मस्त हैं—बिन्दास !

समकालीन प्रगतिशील साहित्यकारों में इनका प्रमुख स्थान है। सातवें दशक की कविता के एक जाने माने हस्ताक्षर। बारीक कविता और कविता की बारीक समझ रखना इनकी विशेषता है।

और ! इन सबके अतिरिक्त राजस्थान के जानेमाने हास्य-कवियों में अग्रज।

बदलते हुए तेवर

तब से अब तक
हमारे ही खून की, मशालें जला कर
तुमने जश्न मनाये !
रक्त की अंतिम बूंद, चूसने को लालायित
तुम्हारी जीभ बाहर लटकती रही
वतन की सेहत के लिये, तुम
जी भर कर जाम पीते रहे !
और खुमारी में बडबडाते रहे
समाजवाद के नारे !!
तुमने !
हाँ तुमने,
इन्सानों की रिहाइश के लिए
गटर के मुंह खुलवा दिये

खाने को ईंट-पत्थर ही नही
चूहे खाने की 'नेक' सलाह दी,
कपड़ा,
वह तो तुमने !
दु:शासन को शह देकर
द्रौपदी के कफन तक
से खिचवा लिया
जब चाहा, आदमी के
खून को जमाया
जब चाहा उबाला
उसकी कुंठाओ से खेलते रहे
उसकी अंतडियों मे—
सैंकडो बिच्छुओं के डंक लगाते रहे
लेकिन,
उसके चीखने चिल्लाने से पहले
उसके होठो पर कील—
ठोंक दी गई !
और उसे दरिद्रता के हाथियों से
कुचलवा दिया गया !
लेकिन अब,
हवाओ ने तेवर बदल दिये है
सूर्य, उनकी मुट्ठियों मे हैं
बाजुओं में,
संघर्षो के पहाड़ सिमटे हुये हैं
अंधेरे उसके खौफ से तिलमिलाने लगे है
वह, चलती फिरती लाश नही,
लोहे से फौलाद में बदलता जा रहा है
उसकी भृकुटि के इंगित से
खाल ओढे भेड़िये मिमियाने लगे है

अब !

अब और अधिक उदासी,

न ओढ पायेगी—नयी पीढी—

निचुडती हुई श्रम-शक्ति

धरती की दरारों मे

जो लावा बाहर आने को

मचल रहा है,

वह बाहर आने दो

ढह जाने दो !

बदबूदार तहखाने—

अब ! हां अब !

हवाओ का रुख पहचानो

"वक़्त ने तेवर बदल लिये हैं"

•

अतीत की बाहें

अतीत की बाहों में

बंधा हुआ मन

धूप भरी रेत में

बढ़ते चरण

रीता उन्माद,

मत छुओ याद

आज

इस दोपहरी में

अकुलाते क्षण

अंकुराई

भावो की डाल पर, पीत

सागर की पलकों पर

उतरा सगीत

रेतीले टीलों में
उड़ते बगूलों मे
झुलस गये लपटो से
गध भरे कन
हवाओं से टकराती
चन्दन की वास
पतझर............
के आने का
देकर आभास,
बढा गई प्यास
गंगा के पास
जुगनू से उड़ते रहे
जीवन के क्षण
हरी-भरी शाखा मे
उलझा पवन सुधियों के हाथो मे
जैसे दरपन !

बिसरी संवेदनाएँ

सहानुभूति की आरियों से
और कितना काटें
टुकड़ो के और टुकड़े करके भी तो
नही सिमट पाते है झुग्गियो मे
सड़क पर बिखरी कतरनों मे
न ही बध पाती है धूल
सजीव हड्डियों के जो ढेर
गुंफित हैं टहनियो पर
नये अंकुर, नये पत्ते
नये फूलों के साथ
जीते हैं निष्क्रिय विवशता

जल जल कर धुआं बनने की
धुआं बनने की
हवन कुंड में फेंके गये
मुट्ठी भर दानों से
धुआं और बढ़ जाता है
राज भवनों में
ठहाका लगाता है एक उपहास
इस गूंगी घुटन के नाम

जहर—
हवा में घुटनों से ऊपर तक चढ़ जाता है
छोटे घरों के ढके हुए बर्तनों में
चीख़ उठता है रीतापन
महानुभूतियों की आरियां
फिर काट देती है स्पन्दन टुकड़े-टुकड़े

समाचार पत्र—
नारे लगाते हैं इस औदार्य के
दीपकों की अन्तिम लौ
तोड़ देती है सांस
रौशनी की तलाश में
नये प्रकाश में

फिर चमचमाने लगता है
हड्डियों से तराशा
प्रमादी सौंदर्य

नये खून से सींची
फिर गदराने लगती है
अंगूर की बेल
तृप्तियां और तीव्र हो जाती है
क्रय की गयी भूखों से
विकासशील वैज्ञानिक-महत्वाकांक्षायें

खिड़कियाँ बन्द करके,
निर्माण कर लेती हैं
एक और विध्वंस !
अपनी सुरक्षा के लिये
सड़क पर बिखरी कतरनों को
और बिखरा जाती है हवा !
दीवारो के उस पार फिर
ठहाका लगाता है एक उपहास
और इस पार
छोटे घरों की बस्तियों में
भर जाता है सीला हुआ दिन
उमसती हुयी रात !
आरियों के कटने का कोलाहल
फिर डूब जाता है
समाचार पत्रों के नारों में ।

●●●

कुमार शिव

राजस्थान के युवा लेखन मे कुमार शिव का उदय अपने आप में एक महत्वपूर्ण घटना है। आपका लेखन समकालीन सच्चाइयों को जानने और एक अन्धी सुरंग में अपनी कोई पगडन्डी तलाशने मे निष्ठापूर्वक लगा हुआ है।

ताज़गी भरे बिंब और अपनापे के रेशे-रेशे खोलकर गुंथा हुआ शिल्प अर्थात कुमार शिव शब्द और अर्थ की समूची चेतना से जुडा हुआ है।

सभी शीर्षस्थ साहित्यिक पत्रिकाओ मे कविताऐं और लेख प्रकाशित। आठवें दशक के तेज-तर्रार कवियों में एक विशिष्ट नाम।

चार गज़लें

(१)

आवे में बर्तनों सा पकाया गया हमे,
उत्सव के ढोल जैसा बजाया गया हमे।

जब भी तिमिर के कोप का भाजन हुआ नगर,
हम थे प्रकाश-पुञ्ज जलाया गया हमे।

शायद है आज देश मे त्यौहार ईद का,
बकरो के साथ-साथ सजाया गया हमें।

हम तो पड़े थे प्लेट मे बन कर गिलौरियाँ,
थे दोस्त मेहरबान चबाया गया हमे।

कुछ टोपियों ने जश्न मनाया था एक रात,
डण्डों के ताल-स्वर पे नचाया गया हमें।

•

(२)

जिन्दगी को इन्द्रधनुषी कह रहे हैं,
रेत की दीवार बनकर ढह रहे हैं।

सुख, धुएँ सा दीखता चिमनी के ऊपर,
दुख, तरल होकर सतह पर बह रहे हैं।

धूप कपूंरी शहर से उड़ गई है,
हम अँधेरा ही अँधेरा सह रहे है।

आंधियाँ पीली हिलाती हैं महल को,
तृण बने हम झोंपड़ी में रह रहे हैं।

आग ने हमको भिगोया है बरस कर,
गर्म लपटों में नदी की दह रहे हैं।

•

(३)

सूरज पीला है गरीब का,
आटा गीला है गरीब का।

बन्दीघर मे फँसी चाँदनी,
तम का टीला है गरीब का।

गोदामो में सड़ते गेहूँ,
रिक्त पतीला है गरीब का।

सुर्ख – सुर्ख चर्चे धनिकों के,
दुखड़ा नीला है गरीव का।

स्वर्णिम चेहरे झुके हुए हैं,
मुख जोशीला है गरीब का।

•

सत्य तो बोले नही, सौगन्ध पर, खाते रहे,
हाथ मे गीता लिए हम झूठ दोहराते रहे।

छा गया देखो चतुर्दिक शोक का वातावरण,
डाकिये दिन चिट्ठियाँ कोने फटी लाते रहे।

भूख से दम तोड देते नित्य जो फुटपाथ पर,
लोग ऐसे सैंकड़ो आते रहे जाते रहे ।

कोई क्यो डूबा सरोवर में, हमें क्या वास्ता,
नाव मे बैठे हुए हम तो 'गज़ल' गाते रहे।

वर्ष के शुभ-आगमन पर हमने स्वागत यों किया,
रोशनी को हम धुएँ के हार पहनाते रहे।

●●●

अखिलेश 'अंजुम'

शिक्षा—एम. ए.
सम्प्रति—डी. सी. एम. संस्थान, कोटा में कार्यरत।

हिन्दी कविता और कथा साहित्य दोनों क्षेत्रों में कार्यरत।

देश की कई स्तरीय पत्रिकाओं मे छपते रहने वाले अखिलेश 'अंजुम' सुस्थापित कवि हैं। उर्दू तथा हिन्दी दोनों मे ही समान अधिकार।

बुलन्दशहर के रहने वाले हैं अतः काव्यात्मक सम्प्रेपण पश्चिमी उत्तर प्रदेश की विशिष्ट छाप लिये होता है।

दो गजलें

(१)

घर बिना छत बनाये जायेंगे,
लोग जिनमें बसाये जायेंगे।

आपका राज हो या उनका हो,
हम तो सूली चढाये जायेंगे।

साल–दर–साल बाढ़ आयेगी,
आप दौरों पे आये जायेंगे।

बूढ़े बरगद पे देखना जाकर,
अब भी दो नाम पाये जायेंगे।

हम तो होते रहेंगे यूंही हवन
लोग उत्सव मनाये जायेंगे।

•

(२)

जिगर का खून जब होता है, तो आंसू निकलते हैं,
ये अंगारे हैं, वो जिनको उठाते हाथ जलते हैं।

उन्हे पाने को दिल मचला है इस तरह जैसे,
खिलौना देखकर दूकान में बच्चे मचलते हैं।

हँसी होठो पे मेरे मुद्दतों के बाद यूं आई,
कभी मुफलिस की जैसे जेब से सिक्के उछलते हैं।

हमारी जिन्दगी का मुख्तसर इतना फ़साना है,
हँसी होठो पे है और आंख से आंसू उबलते हैं।

गिला उनकी जफा का क्या करूं इस दौरे-हाज़िर मे,
जहाँ पर फितरतन कुछ लोग मौसम से बदलते हैं।

नही है गोश-बर-आवाज़ सदरे अंजुमन अब तक,
शिकस्ते-साजे-दिल पर आज भी नगमे मचलते हैं।

शहीदे-इश्क की ख़ाक को माथे चढा 'अंजुम',
यही वह खाक है जिससे चमन मे फूल खिलते हैं।

•

सूरज नंगी पीठों पर

माथे से लेकर
हाथो तक
बढ़ते ही जाते है
मकड़ी के जाले !
चटक-चटक टूट रही
गुदडी की सीवन;
उघड रहा, दिन-प्रतिदिन
ढका-छुपा जीवन,
जूझता अभावो से
आदमी
क्या ओढे और क्या बिछाले !!
सूरज नंगी पीठो पर
मार रहा कोड़े
कैद हुए आंगन मे

जायेंगे कहाँ हम भगोड़
अब अपने हाथों से
फोड़ रहे
अपने ही छाले !!!
बढ़ते ही जाते हैं
मकड़ी के जाले !!!

•

गीत

हमारे और तुम्हारे बीच
जो पुल था
दरककर रह गया है,
अब विगत क्षण है
कि जैसे
हाथ से छूटे कबूतर
और यह सम्बन्ध
हाथों में
फंसा रूमाल
अश्कों से हुआ तर,
एक फटी-तस्वीर सा
अस्तित्व
अपने पर सिसककर रह गया है,
नीव की अनगिन
दरारें
और यह टूटा मनोबल
खोखली मुस्कान से
फिर भी
स्वयं से रोज का छल
एक खाली हाशिये सा
व्यथित-मन
प्रति-पल कसककर रह गया हैं

•••

महेन्द्र चतुर्वेदी 'नेह'

जन्म—२३ नवम्बर, १९४८ मथुरा
शिक्षा—एम. ए. (हिन्दी) एवं डिप्लोमा इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग
संप्रति—श्री सी. एम. संस्थान, कोटा।

पेशे से इ जीनियर, विचारों मे मार्क्सवादी 'नेह' नगर में जनवादी लेखन के प्रणेता एवं आधार हैं। देश की वामपंथी पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। आप सर्वहारा के भविष्य के प्रति बेहद आस्थावान एवं इस्पात की तरह दृढ़ तथा सकल्पबद्ध हैं।

विशेष प्रेरणा—मा का श्रम-जीवी दृढ़ तथा अध्ययनशील चरित्र। बचपन मे ही मा के माध्यम से टालस्टॉय, दॉस्तोवस्की, चेखव, मैक्सिम गोर्की, मुंशी प्रेमचन्द एवं शरत् चन्द्र के उपन्यासो से परिचय तथा प्रेरणा।

"व्यवसायिक लेखन के दुर्गन्धयुक्त कीचड़ से निकल कर जीवन के इस महान् सत्य से साक्षात्कार कि साहित्य को विराट शोषित-पीड़ित जनता का पक्षधर होना चाहिए। किसी भी लेखक द्वारा सर्वोत्कृष्ट कोटि का लेखन तभी संभव है जब वह मानव मुक्ति-संग्राम में सर्वहारा वर्ग का अनुशासन स्वीकार करे तथा व्यापक जन-गण के सुखों:-दुःखों:, आशा-आकांक्षाओं एवं संघर्षों के साथ एकरूपता स्थापित कर ले।"

—महेन्द्र 'नेह'

पहचान

वहाँ सारे भरम टूट जाते हैं
रटी रटाई परिभाषाओ के
सारे मुलम्मे उतर जाते हैं
जहाँ दुश्मन ठीक सामने होता है
हथियारो से लैस

सचाई–वास्तविकता होती है तब

नंगी, क्रूर और बदजायका।

सिर्फ किताबो मे ढूँढे गये समाधान
तब काम नहीं आते
तब पहचान होती है आदमी को
साफ-साफ़
कि असली जमीन कौन सी है
जहाँ वह खड़ा है
और कितनी देर टिका रह सकता है ?
लाठियों, छुरो और पत्थरों के सामने।

वही मालूम होता है
कितनी सियाह है गुलामी की पर्तें ?
और आजादी की कौंध देखने के लिए—
कितना तपाना होता है फौलाद को ?
कितनी हवा देनी होती है आग को ?

उसके पंजे, नाखून और मांस पेशियाँ
कौन सी धातु के बने है
यह वही ज्ञात होता है
लड़ाई के मैदान में
जहाँ दुश्मन ठीक सामने होता है
हथियारों से लैस
सचाई-वास्तविकता होती है तब
नंगी, क्रूर और बदजायका।

•

संकेत

वे देखते हैं—हमारी आँखों मे
वे चलते हैं—हमारे पाँवों से
और वे खाते हैं—हमारे हाथों मे

वे नफरत करते हैं—हमें हमारी आँखों मे

वे रौंदते हैं हमें—हमारे पाँवों से
और वे कत्ल करते हैं हमें—हमारे हाथों से

वे हमारी आँखें निकालते हैं
और हमारे हाथों में जुम्बिश नहीं होती
वे हमारे हाथ उतारते हैं
और हमारे पाँवों में हरकत नहीं होती
वे हमारे पाँव काट देते हैं
और हमारी आँखों में खून नहीं उतरता—

एक दिन ऐसा भी आयेगा—
जब उनके पास आँखें नहीं होंगी—रोने के लिए
उनके पास पाँव नहीं होंगे—भागने के लिए
और उनके पास नहीं होंगे हाथ—आत्महत्याएं करने के लिए

उस दिन को करीब
और सबसे करीब लाने के लिए
क्या जरूरी नहीं है
कि हमारी आँखें
समझें एक दूसरे की मौन भाषा को
शिनाख्त करें साफ-साफ हत्यारों की

हमारे हाथ
जुड़ जायें एक दूसरे से
फौलादी रक्त—धमनियों की अटूट श्रृंखला में
और हमारे पाँव
तैयारी करें उस दिशा में चलने की
कुतुबनुमा जिधर सीधे सीधे संकेत कर रहा है ।

•

रोटी का सवाल

रोटी का सवाल भैया रोटी का सवाल
लाखों लाख करोड़ों भूखे नंगों का सवाल
तेरा भी सवाल है ये मेरा भी सवाल !

तेरे घर में आधी रोटी मेरे घर में फाका
तेरे घर में सेंध लगी तो मेरे घर में डाका
तू भी फटेहाल भैया मैं भी फटेहाल !

तुझको मारा खुली सड़क पे मुझको गलियारे मे
तुझको मारा भिनसारे मे मुझको अँधियारे मे
जीना है मुहाल मेरा तेरा भी मुहाल !

तुझ पे गोली चली खेत में मुझ पर मिल-हाते मे
दोनों नाम लिखे मण्डी के बनिये के खाते मे
तू भी हुआ हलाल प्यारे मैं भी हुआ हलाल !

तू चक्की मे पिसा दवा मैं ज़ालिम चट्टानो मे
तू भँवरों में फँसा हुआ मैं पागल तूफानों मे
मैं थामूँ पतवार थोडी तू भी झोंक सँभाल !

तेरी भवें तनी आँखों में मेरे भी अंगारे
तू भी काट गुलामी मैं भी तोड़ूँ वन्धन सारे
मैंने लिया हथौड़ा साथी तू भी उठा कुदाल !

•

हम सब नीग्रो हैं !

हम सब जो तूफानों ने पाले हैं
हम सब जिनके हाथों में छाले हैं
हम सब नीग्रो हैं ! हम सब काले है !!

जब इस धरती पर प्यार उमड़ता है
हम चट्टानों का चुम्बन लेते हैं
सागर-मैदानों ज्वालामुखियों को
हम बाँहो मे अपनी भर लेते हैं

हम अपने ताजे टपके लहू से
इस दुनियाँ की तस्वीर बनाते है

शीशे – पत्थर – गारे – अगारो से
मानव सपने साकार बनाते है

हम जो धरती पर अमन बनाते है
हम जो धरती को चमन बनाते हैं
हम सब नीग्रो है ! हम सब काले है !!

फिर भी दुनियाँ के मुट्ठी भर ज़ालिम
मालिक हम पर कोड़े बरसाते है
हथकड़ी – बेडियो – जजीरो – जेलो
काले कानूनो से बँधवाते है

तोड कर हमारी झुग्गो झोपडियाँ
वे महलो मे बिस्तर गरमाते है
लूट कर हमारी हरी भरी फसले
रोटी के टुकड़ो को तरसाते है

हम जो पशुओ से जोते जाते हैं
हम जो बूटो से रौदे जाते हैं
हम सब नीग्रो है ! हम सब काले है !!

लेकिन ज़ुल्मी, हत्यारो के आगे
ऊँचा सिर अपना कभी नही झुकता
अन्यायो–अत्याचारो से डर कर
कारवाँ हमारा कभी नही रुकता

लूट की सभ्यता लंगडी सस्कृति को
क्षय कर हम आगे बढ़ते जाते है
जिस टुकड़े पर गिरता है खून अपना
लाखों नीग्रो पैदा हो जाते है

हम जो जुल्मों के शिखर ढहाते है
जो खून मे रग–परचम लहराते है
हम सब नीग्रो हैं ! हम सब काले हैं !!

●●●

अरविंद सोरल

जन्म--२१ अगस्त, १९४३
संप्रति--राजकीय सेवा-रत (उप-डाकखाना) कोटा।

"जिस अरविंद सोरल से मैं परिचित हूँ वह न किसी कैमरे की जद मे ही आ पाया है और न ही किसी आइने की।

बहुत पहले अपने आप से एक वायदा किया था--हथेलियों को दृष्टि देने का! तब से इस वचन-भ्रूण को बाकायदा सेता आ रहा हूँ।

तमाम कमियो, अभावों एवं अधूरेपन के बावजूद इस भ्रूण की धड़कती हुई नब्ज़ कुल मिलाकर इकलौती उपलब्धि है। जिस दिन यह भ्रूण पूर्ण विकसित होगा शायद उसी दिन स्वय से परिचित हो कर अपने प्रति दो-टूक बातें कह पाऊंगा!

तब तक के लिये इतना ही कि--

जेठ की दुपहरी में नंगे पांवों में पड़ते
छाले मुझे वर्तमान व्यवस्था से
समझौता नहीं करने देते।"

--अरविंद सोरल

तलाश

कविता की तलाश मे
आँख जब खोली
तो
फर्श पर
टूटा कांच
जूठे चावल
गीले पावो के धुंधलाए चिह्न
खून-आलूदा-धूल

या ज्यादा से ज्यादा
मोर पख का आभास देता
एक काला धागा !
और मस्तिष्क
आदिम धाराओं के तट पर
ध्वस्त सस्कृतियों में
पागल पुरातत्वी
और फेसिल्स
हाथ उठाए
खोजते हैं
झुके कचनार
सोन–जूही धूप
माग भर सिन्दूर
थाल भर रोली
कविता की तलाश में
आख जब खोली।

•

दो गजलें

(१)

सिक्के हवा मे देखिए यूं न उछालिये
जलते हुए सवाल हैं ऐसे न टालिए।
ढाल की व्यवस्थाएं चरमरा गईं,
खजर उठाइये या गर्दन निकालिए।

इस चमन मे आपने बोये थे कुछ बबूल,
हो सके तो अब जरा दामन सभालिये।

अब हमारी चाल भी तो देखिये हुजूर !
आपने तो दांव अपने आजमा लिए।

हमारे हाथ बढ़ चुके हैं नोचने नकाब,
क्या हुआ जो आपने चेहरे छिपा लिए।

बेशक हमारे खून को चूसा गया मगर,
बाकी है अगर एक भी कतरा उबालिए ।

•

(२)

धूप गरजती नक्कारों पर, लिये हाथ में तूती छत,
तन की कोपिन, सर का छप्पर, और पांव की जूती छत ।

मखमल के कुछ राजमहल है, रेशम के कुछ मौसम है,
बाकी है उन्चास हवाएँ, तार-तार एक सूती छत ।

न काई, न कुक्कुरमुत्ता और न नागमणी की पौध,
जब से आंगन बधियाया है तब से रही निपूती छत ।

एक घरौंदा जिस पर उँगली, उठा रही सारी दुनियां,
दीवारों की नींव कहां है ? आसमान क्यों छूती छत ।

•••

विपिन मणि

जन्म—१२ दिसम्बर, १९४८
संप्रति—डी. सी. एम. संस्थान, कोटा में कार्यरत।

हिन्दी काव्य क्षेत्र मे एक उदीयमान किंतु सतर्क एवं गम्भीर हस्ताक्षर।

मेरठ (उत्तर-प्रदेश) जिला कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष। वैद्य केदार नाथ जी के सुपुत्र। मणि का व्यक्तित्व एक जुझारू योद्धा का मूर्त्त प्रस्तुतीकरण है। सीधी बात करने वाले मणि सीधे-सादे अंदाज मे कविता करते हैं। पाठक को प्रभावित करने एवं श्रोता को अपनी विशिष्ट पाठ-शैली मे रोमांचित करने मे आप समर्थ हैं।

"भाई साहब! मजदूर आदमी हूँ। मजदूर की बात, मजदूर के लिये, मजदूर की भाषा में कह देता हूँ। चूंकि मजदूर की बात कहने की आवश्यकता तो निरंतर ही है इसलिये अनवरत लिखता हूँ।"

—विपिन मणि

जली मशालें तेज करो

बुझने मत दो संघर्षों की जली मशालें तेज करो!
तेज करो सब अपने हंसिये और कुदालें तेज करो!

वो मेहनत-कश जो पीडित है, सूदखोर सरमाये से।
वो मजदूर-किसान हमारे, जो रहते घबराये से।
जिनके सब अधिकार कैद है, बस दो चार निवालो मे।
जिनके तन को कपड़ा मिलता, तड़प तड़प कर सालो मे।

उनके खातिर त्याग करो! कुछ स्वारथ से परहेज करो!
तेज करो सब अपने हंसिये और कुदालें तेज करो!!

छत के बिना कुआंरी बैठी, जिनके घर की दीवारें।
जिनके घायल दरवाजों पर हँसती ऊँची मीनारे।
जिनके सूखे से अधरो पर पपडी जमी पहाड़ी सी।
धीरे-धीरे चले जिन्दगी जिनकी टूटी-गाडी सी।

उनके ख़ातिर आज उपस्थित सच्चे दस्तावेज करो!
तेज करो सब अपने हंसिये और कुदालें तेज करो!!

कहने को आजाद हुए हम लेकिन अभी गुलाम है।
भारत को जो कहे 'इन्डिया' उनके ऊँचे दाम है।
बैसाखी के बल चलते जो अब भी वो हुक्काम है।
इसी लिए हम भिखमगे से दुनियाँ में बदनाम हैं।

अपने पावों चलकर जग को अब हैरतअगेज करो!
तेज करो सब अपने हंसिये और कुदालें तेज करो!!

•

आज घटा घनघोर बहुत है

माँझी! नाव सँभाले रखना तूफानो का जोर बहुत है
गरज रहे हैं काले बादल आज घटा घनघोर बहुत है

दूर क्षितिज मे चमकी थी जो
किरण आस की धुंधलाई
ग़म की काली रात भयंकर
आज ले रही अंगड़ाई

केवल आधी रात कटी है दूर अभी तो भोर बहुत है
माँझी! नाव सँभाले रखना तूफानो का जोर बहुत है

भूखी लहरें बोल रही है
नारे आन्दोलन अपनाया।
घेरावों का शस्त्र उठाकर
अधनंगो ने बिगुल बजाया।

गूंज रही है सभी दिशाएँ आज भयानक शोर बहुत है
माँझी ! नाव सँभाले रखना तूफानों का जोर बहुत है

देखो ये पगलाई लहरें
छीन न लें पतवार तुम्हारी
फंसी हुई गिरदाब में कश्ती
डूब न जाये आज हमारी

हिम्मत से पतवार सँभालो यह आँधी पुरज़ोर बहुत है
माँझी ! नाव सँभाले रखना तूफानों का जोर बहुत है

बिल्कुल इसी जगह ऐसे ही
कल भी डूबी थी इक नैय्या
बचा न पाया कोई उसको
हार गया मगरूर खिवैय्या

यही अभावों का मौसम है, हड़तालों का दौर बहुत है
माँझी ! नाव सँभाले रखना तूफानों का जोर बहुत है

जब जी चाहा तभी समय ने
सूरज का भी रथ जा मोड़ा
हर दम्भी का दर्प मिटाकर
शैतानी अनुशासन तोड़ा

जिसने समय नही पहचाना आज वही कमजोर बहुत है
माँझी ! नाव सँभाले रखना तूफानों का जोर बहुत है

•

कौन फिर मुस्कान देगा ?

कौन बढ़ती त्रासदी से प्राणियों को त्राण देगा ?
आह भरते बेबसों को कौन फिर मुस्कान देगा ?

आज काले बादलों से हो गया आकाश काला
भूख के शैतान ने है उपवनों मे जाल डाला

झर गये है फूल तन के, मर गई कलियाँ हजारों
वृक्ष अधनंगे, लुटे-से, पंथ में देखो पड़े है

कौन इन सूखे तनों को वृक्ष का सम्मान देगा ?
आह भरते बेबसो को कौन फिर मुस्कान देगा ?

गिर गये मंदिर अनेकों प्रेम की दीवार टूटी
बाढ़ सी आई घृणा की कर्म की पतवार छूटी
भूख का तूफ़ान ही तो पाप का तूफान लाया
मौत का चेहरा भयानक ! त्रासदी को साथ लाया

कौन मरते प्राणियों को आज जीवन-दान देगा ?
आह भरते बेबसों को कौन फिर मुस्कान देगा ?

भूख विष-कन्या बनी सी आज घर-घर घूमती है
चूस लेती खून, जिसको अंक मे ले चूमती है
जल रहा है आज कण-कण भूख से व्याकुल धरा है
खो गया है चैन, मन मे भूख का ही भय भरा है

कौन बढ़ता भय मिटाकर चैन का वरदान देगा ?
आह भरते बेबसो को कौन फिर मुस्कान देगा ?

०००

आत्माराम

जन्म—२६ मई, १९५३

संप्रति—ओ. पी. सी. फैक्ट्री, केबल नगर, कोटा द्वारा संचालित विद्यालय में सहायक अध्यापक।

वामपंथी विचारधारा के ध्वजाधारी सिपाही, प्रखर एवं साहित्यिक चेतना से सम्बद्ध उदात्त युवक है—आत्माराम! कम्युनिज्म पढने-पढाने के बाद जिस द्वंद्वात्मिक दृष्टि का विकास अपने आप में आत्माराम कर चुके है, वह उनकी कविता को उस्तरे की धार की तरह पैना कर जाती है।

"कविता मेरे लिए कोई शौक या शगल नहीं है। मैं कविता लिखता भी नहीं हूँ, किन्तु वर्ग-संघर्ष में जो तबका 'रिसीविंग एण्ड' पर है, उसकी तकलीफ जब बर्दाश्त के बाहर हो जाती है, तब एक आग उठती है, उसकी लपटों का बयान होती है मेरी कविता।"

—आत्माराम

तलाश

अब इसके पास/नैतिकता के नाम पर
मात्र एक धोती/एक कुरता—
बचा है।
अपने बेटे के किसी भी सवाल का जवाब देने मे
असमर्थ वह उन पत्थरो की तलाश मे रहता है
जिन्हें उसके मजबूत बाजुओं की जरूरत है।
जिसके लिए वह हर वक्त तैयार रहता है
नैतिकता के आखिरी छोर को बचाते हुए
लहू की आखिरी बूँद तक।
उसके बेटे का सवाल छोटा क्यों हो जाता है?

सुरंग बिछाने के सवाल से.... ...
मजबूनी से पत्थरों पर
कतरा-कतरा लहू टपकाने के सवाल से
फिर भी आखिर/उन चार गड्ढों का सवाल
बेटे से, सुरंग से, मजबूत बाजूओ मे बडा रहता है
बहुत बडा !

एक टीस हर वक़्त उसके भीतरी ससार मे उठती रहती है
कि, क्या जरूरी है—
बेटे का सवाल/सुरंग बिछाने का सवाल
या नैतिकता का सवाल/या फिर
गड्ढो का सवाल
आख़िर क्या जरूरी है !
वह ख़ुद एक सवाल हो जाता है।

सवालो में उलझी उसकी एक जोडी नैतिकता
तार-तार होने लगती है
पत्नी को एक ही 'तलाश'
सुई-धागे की नैतिकना सीने को
सीने को सारे देश की नैतिकता सीने को.. . ...
आख़िर इतने मज़बूत यह बाजू
इस खोखली व्यवस्था को तोड़ने के लिए
क्यो नहीं उठते ! क्यो रुक जाते है !

ठेकेदार को मारने के इरादे के बावजूद
उसके सामने जाते ही क्यों मुड जाते है !
वह बेटा—जिसे उसने हज़ार सवालों मे लिपटा
पैदा किया........बापू मैं........मुझे
मेरे खिलौने ला दो
मुझे लारी ला दो, मैं दिल्ली जाऊँगा........
(यहाँ वह खुश रहता है)
वही बाजू और वही पत्थर
एक दिन इसी लारी मे भरकर वह दिल्ली जायेगा
अपनी अगुलियों का वही लहू तलाश करने के लिए

अपनी आंखो की मचलती भूख को तलाश करने के लिए
अपने बेटे के सवालो की तलाश करने के लिए
यह बात अब घीमू के समझ मे आने लगी है
अब वह नैतिकता मे
कोशिश कर रहा है कि
वह कितनी तेजी से पत्थर फेंक कर/
सामने वाले महल की
खिड़की के शीशे तोड़ सकता है !

रिव्यू

हां-हां ! कल ही एक कविता लिखी थी
मैंने—मित्रो के नाम ! अजीजो के नाम !!
एक कविता मेरे नाम !
कविता जो कल मैंने लिखी थी

नदी नही है,
न ही नदी का पानी है,
कविता चेहरा है
चेहरे पर पडी रेखाएं हैं
चेहरे पर पड़ी झुर्रियां हैं कविता !

कविता ललाट पर एक धूल का नक्शा है
हां-हां, धूल का
मेरी कविता, मैं हूँ !

कविता एक ट्रेजडी है
'रिव्यू' है, यकीनन एक 'रिव्यू' है
यात्रा है, लेखा-जोखा है,
खाता-बही है, मेरी कविता, और
मैं हूँ !

कविता-रोटी है, पानी है, हवा है

इनके लिए एक तरस है, मेरी कविता
जो कल—पाब्लो के नाम
हिकमत के नाम, किस्ता, भूमैय्या के नाम
पड़ौसी घीसू के नाम—
लिखी थी मैंने कविता
मेरे नाम लिखी थी
कविता !
कविता कीर्ति नही और
न ही ज्वालामुखियो की रौशनी है मेरी कविता

संक्षेप मे,
आग तो नही
आग की लपटो का बयान है,
व्यक्तित्व का विघटन है,
नये की पैदाइश है मेरी कविता
जो कल मैंने मित्रो, अजीजो के नाम लिखी थी
मेरे नाम लिखी थी—
एक कविता !

•

जुड़ाव

मैं/अपने लहू को
गुलमोहर के फूलों से जोड़ता हूँ
जो/जेठ की तपती धूप मे भी
सुर्ख ललाई लिए होते हैं।
मैं/अपनी आवाज को
गुरिल्ला की बन्दूक की नली से जोडता हूँ
जो/अपने गर्भ से एक नये इतिहास को
जन्म देती है।
मैं/अपने हाथों को
दाई के उन हाथों से जोड़ता हूँ
जो/एक नये इन्सान की पैदाइश में

मदद करते है।
मैं/अपने पाँवो को
उन पाँवो से जोडता हूँ
जो/आधे ज़मीन मे धस कर भी
सिर्फ लडने की उम्मीद मे जीना चाहते हैं।
मैं/ अपनी मिट्टी को
उस जमीन से जोड़ता हूँ
जो/सुर्ख लाल गुलाब और
गुलमोहर के पेड पैदा करती है।

•

सहर होने तक

एक सुहानी सहर होने तक !
अगर तुम मेरा साथ दो
हम अपने बच्चो की मुस्कान को
बरकरार रख सकेंगे
तुम मेरे साथ हो—
अपने प्यारे बच्चो के लिए।
बच्चे हमारा भविष्य हैं
हम बच्चो से वैसे ही प्यार करते हैं
जैसे—मशालो से,
उगते सूरज की पहली ताज़ा किरण से
यह ताजगी हमेशा/मुस्कान है
बच्चो की मुस्कान की तरह।
जिन्हें ज़िन्दा रखने के लिए
तुम मेरा साथ दो
एक सुहानी सहर होने तक !

•••

प्रेम प्रकाश मिश्रा 'रौशन' कानपुरी

जन्म—१८ जुलाई, १९४६
शिक्षा—एम. ए. (मनोविज्ञान) डी. ए. वी. कॉलेज, कानपुर
सम्प्रति—जे. के. उद्योग समूह, कोटा में कार्यरत ।

'रौशन' कानपुरी—जो उजाले मे बैठा अधेरे की हर हरकत और षडयंत्र देख रहा है । सुविधाओ मे असु विधा का दर्द महसूस कररहा है, जिसके लिये जिन्दगी ख्वाब या फलसफा नही है बल्कि एक जिंदा हकीकत है ।

कविता जिसके लिये विसगतियों को बेनकाब करने का 'चाकू' है । कविता जिसके लिये गाने–बजाने एव मात्र मनोरजन का साधन नही बल्कि बेबसी और जुल्म को महसूस करने–कराने का, साथ ही सार्थक विरोध की आग को हवा देने का माध्यम है ।

'रौशन' कानपुरी—जो एक ख्वाव को "सगम" का रूप दे चुका है । जो दिवा स्वप्नो को आग लगा देता है, लोगो को जमीन पर खडा करता है और अपने पैरो की जमीन नही खिसकने देता ।

मशीनी दुनियाँ के बीच चुपचाप 'कविता' (अपना माध्यम) तलाश करता प्रेम मिश्रा एक ऐसी जागरूक शख्सियत का नाम है जो चुप रह कर भी बहुत कुछ कह देता है और साथ ही पत्थर सी मजबूत काया मे एक नर्म सा दिल भी रखता है ।

धूप और चाँदनी रात

मित्र ! मैं धूप में जब भी
पसीना बहता देखता हूँ
तो झट से जान लेता हूँ
'वह' दुनियाँ को गढने मे लगा है,

पत्थरो को करीने सजाकर
एक तहजीब, एक सभ्यता को
जन्म देने मे लगा है !
जो रोजी–रोटी के
संघर्ष से जुडी है ।
सारी दुनियाँ मे फैली
एक बड़ी लडाई,
जो दुनियाँ भर मे
कन्धे से कन्धा मिला कर
लडी जा रही है एक साथ ।
जिसकी वह एक कडी है
जो एक संघर्ष से जुडी है ।

चाँदनी रात और चाँद-सितारे
किसे नही भाते ?
फिर भी धूल उडाती दोपहर
पसीने से लथपथ कर देने वाली धूप
किसी भी सभ्यता को खडा करने वाली
सबसे मजबूत जमीन है ।

प्रिय का साथ ! चाँदनी रात !
और दरिया मे नाव की सैर !
सबका स्वप्न है पर,
सावधान !
जब तक धूप में
जहर बोया जायेगा
कोई भी तहजीब अपने
काम कब आ पायेगी ?
चाँदनी रातो की नाव
जब तक डुबोई जायेगी
पत्थरो की बिना पर भला
कोई तहजीब कैसे बन पायेगी ?

•

क्रान्ति पुत्र

वह रातों रात भागा
छतों पर सोया
जरा सा खटका होते ही
बमुश्किल मिली नींद छोड
जगल-जंगल बेतहाशा भागा।

आज वह सांस ले रहा है।
उन्नीस खूनी महिने बीत गये है।
इतिहास का एक और
खूनी अध्याय पूरा हुआ।

व्यवस्था का कारकुन पुलिसमैन
राजसत्ता का औजार—'मीसा'
बांह से उतार
जेब में रक्खे मुस्कुरा रहा है।

वह फिर इस आशका मे है, कि
उसे रातों–रात भागना होगा
छतो पर सोना होगा
क्योंकि कल वह 'महामाता' की
आँख मे खटकता था
और आज इनके पैरो में
चुभने वाला कांटा है।

वह ! जो भविष्य का क्रान्ति–पुत्र है
फिर से तैयार है।
कल निश्चय ही उसका है,
क्योंकि उसका निश्चय दृढ़ है,
और वह दूर तक देख पा रहा है
एक चमकता हुआ भविष्य !

•

बूढ़ा सूरज

यह सूरज जो फिर कर रहा है वादे
देने का—जाड़े की नरम धूप, रेशमी धूप
मत भूलो ! जिस्म को झुलसाने वाली
गर्म लू के चाँटे भी मारे है इसी ने ।
बौछार की है लात घूँसों की
किया है बेइन्तहा लाठी चार्ज
छोड़े है आँसू गैस के गोले
चलाई है बेशुमार गोलियाँ
जिसके खाते मे जमा हैं अब तक
ढेरो गोलीकाण्ड—लापता लाशें—
हजारों माँगो का सिंदूर—
जो चुपचाप अब भी सवाल है
जलते हुए, धधकते हुए !

जमीन और आसमान की सन्धि रेखायें
घायल लहु-लुहान पडा हुआ
बेनूर बूढा सूरज,
छटपटाता, पहलू बदलता हुआ
जरा भी नज़रे-इनायत
हमदर्दी का हकदार नही ।
इसी ने जमीन के जर्रे-जर्रे का
मुहाल किया था जीना
हर फर्दो-बशर की
उडायी थी धज्जियाँ
चिन्दी-चिन्दी कर दी थी ज़िन्दगी
आस्माँ से बरसाई थी सिर्फ आग,
सिर्फ आग, और आग, और आग !

अगर, भूले से भी कर दिया रत्ती भर रहम
बेरहम होके, होगा मौत के सग रक्सफर्मा
दिल दहलाने वाला होगा खिज़ाँ का मौसम

गर्म हो जायेगी बेहद पैरों तले की जमीन !

तरस खा कर भले ही ले जाओ अजायब घर
भूले से भी घर अपने नही ले जाना
और न रख देना उसी कुर्सी पे
वर्ना फिर होगा वही कुंजे-कफस
और वही सैय्याद का घर !

आधी जली आग नही छोडते
चोट खाया वहशी जानवर
कभी भी 'मौत का वारण्ट' बन सकता है।
और मौके से चूका इन्सान पछताता है।
अपनी सुवह के लिये खुद
अपना सूरज तामीर करना पड़ता है।
किसी के वादो से सुवह नहीं होती
नही आता है हाथ नरम धूप का टुकड़ा।

•

सवाल बीसवीं सदी का

हमेशा की तेज फन्टियर मेल
आज दस मिनट लेट आने को है।
बरावर की पटरी पर एक नन्हा छौना
हाथ मे लिये तिनका, रेलवे-स्लीपर
को कुरेद रहा है, अपने मे गुम।
न जाने कौन सी गुत्थियाँ है
मन की अतल गहराइयो की
जिन्हें सुलझा रहा है।
बाप सड़कों पे बीनता कोयले होगा
माँ दूसरी तरफ रद्दी बटोरती होगी
यह गरीब भूखा है ममता का
रोटी का, कपड़ो का, एक स्कूल का
जो उसे मयस्सर नही !
ये सारी सदियो पे सवाल बना बैठा है

यकीनन नतीजा है सारी सदियों का
अगर ये तुम्हारा या मेरा बच्चा होता (तो)
क्या इस तरह कभी बैठा होता ?

यकबयक मस्ती मे उठके भगा जाता है
सदियाँ बताये ! वह किधर जाता है ?
सवाल ट्रेन के लेट होने का ही नही
सवाल अपनी सदी के नाम है बीसवी सदी का।
जवाब भी इसे ही देना होगा
वह किधर जा रहा है ?
यह सवाल अगली सदी के लिये
किया नही जा सकता मुल्तवी।

दुनियाँ के एक बड़े हिस्से मे—
इन्सान पहुँच चुका है बाइसवी सदी मे
जहाँ इन्सानी मेहनत की औकात
असली ताकत है।
जहाँ लूट का राज खत्म हो गया है।
जब कि हमारे यहाँ सारी सदियाँ
एक साथ गामजन हैं सड़को पर।
हम जगद्गुरु होने का भ्रम पाले
रेत मे गर्दन दबाये शुतुर्मुर्ग बने बैठे है।

•

बताओ ! इनमें तुम कहाँ हो ?

काम से लौटती
सर पर तसला रखे
गदे-फटे कपडो वाली भीलनी
जिसके स्तन बेमुरव्वत से
झांकते हैं
जो हर किस्म के
कोमल भावों को

दर–किनार करते हैं
कोई उत्तेजना नही करते पैदा।

उधर तुम्हारी पत्नी का
पुराना ब्लाउज
उपेक्षित सा बन्द पड़ा है
दूसरा जरा सा फटा
पहना नही जाता।

मैंने कपड़े खरीदे है
उन्हे सिला नही पाता।

मै जानता हूँ
तुम्हे भी मालूम है
कुछ गिनती के कमरे है
उन कमरो मे आलमारियाँ है
आलमारियो मे बेशुमार
सतरगे लिबास है
चन्द्रमुखी सुन्दरियों ने
दिन और रात को बाँट कर
कई टुकड़ो मे,
कई–कई बार पहनने को
सिलवाया है
पर जिन्हे दुबारा नही
पहना जाना है।

इनके रूबरू
काम से लौटती
सर पर तसला रखे
गदे–फटे कपड़ों वाली
जवान (!) बदसूरत भीलनी
अपने तन को ढकने की
बिना कोई कोशिश किये
बडी उपेक्षित खड़ी है
बताओ इनमे
तुम कहाँ हो?

●●●

जगदीश सोलंकी

शिक्षा—एम. ए. (इतिहास)।
संप्रति—ओ. पी. सी. केवल नगर, कोटा द्वारा संचालित विद्यापीठ में अध्यापन कार्य।

साहित्य को मनुष्य के सम्पूर्ण सांस्कृतिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखने की योग्यता रखने वाला निष्पक्ष एव समर्थ चितक।

लोकप्रिय कवि जो अपने मधुर कठ के लिये सु-विख्यात है। राजस्थान के मचीय कवियो की भीड़ मे अपनी अलग पहचान—अपनी अलग राह बनाता चलता—गीत गाता बजारा।

"रचना में 'सोच' तथा विषय का पक्षधर हूँ। मेरे गीतों मे मेरी 'सोच' की शक्ल किस तरह से सामने आती है—इसका निर्णय आप लोगों पर छोड़ता हूँ।"

—जगदीश सोलंकी

गीत

दिन निभाये दुश्मनी ले रात इन्तक़ाम
ऐसे कटी यार अपनी सुबह और शाम

हैं कगार पे खड़े वाट जोहते
आरती उतार कर ही पांव लौटते
एक मुश्त ही चुकाये सिरफिरो के दाम
ऐसे कटी यार अपनी सुबह और शाम

देखते तमाशा हम भी अपने आस-पास
आदमी बदल के हुआ आखिरी लिबास
फूलों के बन्दोबस्त में शूलों का इन्तज़ाम
ऐसे कटी यार अपनी सुबह और शाम

क्योंकि सूरज सबसे पहले
ही चित्तौड़ ने देखा है,
उस माटी को शीश झुकाकर देखले ।
चाहे तो इतिहास उठाकर देखले ।।

लाल गया इक भाल गया
वह जवान गया वह किसान गया,
धरती का इन्सान गया
इन्सानो का भगवान गया,
जाने वाला हम लोगो से
जाने कितनी दूर गया,
राखी का इक तार गया
इस माग का वह सिन्दूर गया,
दर्पण को सौगंध दिलाकर देखले ।
चाहे तो इतिहास उठाकर देखले ।।

•••

मनोज मिश्र

जन्म—१८ अगस्त, १६४८
शिक्षा—डिप्लोमा इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग
संप्रति—जे. के. संस्थान, कोटा से सम्बद्ध ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य एवं रचना-कर्म के सदर्भो मे अपने पैने विश्लेषण और मौलिक स्थापनाओ के लिये चर्चित । हिन्दी कविता का एक स्वतः ही स्पष्ट होता हुआ हस्ताक्षर ।

कविताएँ व लेख साहित्यिक पत्रिकाओ में प्रकाशित ।

"अतीत को याद करना मेरे लिये दुःख स्वप्न को याद करने जैसा है । विसंगतियों में संगति बैठाता मैं यहाँ तक आ पहुँचा । एक विसंगति और..........कि पेशे से इंजीनियर और हृदय (सोच) से कवि हूँ । मेरे लिए *'कविता' विसंगतियों के विश्लेषण और समाधान का सक्षम* माध्यम है ।"

—मनोज

दो–मुँहो राजनीति

बड़े साध श्रम से, किये जो प्रयास
कागजो जहाज़ो–से, लौट आये पास
आश्वासन का 'पलना' कोमल विश्वास
दो–मुँही राजनीति पी गयी उजास ।

लचकदार पैमाने निर्णय के साफ
रात मे कचहरी 'स्विच' सारे आफ
कैसी जूरी है ! कैसा इन्साफ
वेगुनाह दण्डित गुनहगार माफ ।

भीड़ मे अकेले हम खड़े उनके साथ
ढपली अपनी है, पर उनके राग
मल्लाही मन मेरा, कहाँ पाये पार
नावें सब गिरवी है, उनके हाथ ।

•

अंधेरे के खिलाफ

ये उदास
पीले हरे रंग
जिन्दगी के नही हो सकते
ये रग
हमे अथाह नीलिमा मे डुबोते हैं
जहाँ स्याह काली
जिन्दा मौत के सिवा
कोई भी/कुछ भी नहीं होता।

जिन्दगी/बूढी औरत नही है
मासूम बच्ची भी नही है
जिन्दगी/धूप छाँव सहती
पसीने नहाई किशोरी है
एक शोला है
जिसे हवा देनी है।

फिलहाल/इस प्रश्न की कोई अहमियत नही
कि कब तक जलना है
बल्कि जब तक जीना है
धधकना है, सुलगना नही !

मेरे दोस्तो !
पूरब की ओर देखो !
पश्चिम की ओर देखो !
महसूस करो कि
अंधेरे के खिलाफ
जिन्दगी का रग
सिर्फ एक रग
लाल रग ही होता है।

•

जरूरी छटपटाहट

मेरी छटपटाहट को
तुम विक्षिप्तता कह सकते हो
तुम्हारे कहने का भी अर्थ है
मेरे होने का भी अर्थ है

भिंची मुट्ठियों का बार बार ऊपर उठना
होठों का अचेतन में फड़कना
लाल आकाशी आग को
पसीने नहा घंटों पीना
नज़रन्दाज़ कर सकते हो तुम

लेकिन—
एक नोकीली नाक पर
मक्खियों का बैठे ही रहना
बड़े कानों का
बार बार खड़ा होना
क्या अपने आप में/तुम्हारे लिये
कोई मायने नहीं रखता ?
थकी-थकी आंखों
उत्तेजित मुद्राओं के पीछे
एक तूफान है
जो दही से 'फ्रिज्ड' आदमी को
मथ रहा है/मथता रहेगा
निर्णय के होने तक

ये जरूरी छटपटाहट
होती रहेगी
नयी जिन्दगी के प्रसव तक

•

विशिष्ट का आम हो जाना

गलियो, चौराहों, खलिहानों मे
सुनाई दे रहे हैं स्पष्ट स्वर
कही तुम्हे ग्रस न ले
विजयोन्माद का ज्वर ।

विजयोल्लास की बहक आम बात हो सकती है
लेकिन मैने तुम्हे विशिष्ट माना है
और अब
विशिष्ट का आम हो जाना
आम आदमी का सरे आम कत्ल होना है ।

सावधान ।
पचर विशेष दाब मे 'टेस्ट' हो रहा है
ऐसे मे एक भी बुलबुला
घातक हो सकता है ।

स्नेह, अपनापन और श्रद्धा
मै शब्दों में व्यक्त नही कर सकता
क्यो कि,
उखड़े नाखूनों का
पेट–पीठ के घावों का दर्द
किसी हद तक तुमने मेरे बराबर महसूसा है
होठो की सिलन तोडी है
बडा काम किया है कि
कराहने की आजादी दी है
फिर भी आशका है
कि तुम्हे 'मरहम' की बात याद है ।

•

भिनसारे राम राम

तिनके सी किरन दाब चोंच मे
छतों-छतों उड़ी फिरे सोन चिरैया

भिनुसारे राम राम करती
द्वार द्वार गले मिले गौरैया

सुबह उठी पूरब से तम बुहारती
मायावी रातों के भरम तोड़ती
खिड़की दरवाजे सब खटखटा हवा
सपन तोड़ जन-जन की आँख खोलती
उठो ! उठो ! देर हुयी भैय्या भैय्या

देहरी पर पीले अक्षत रखती धूप
राजा परजा सबको न्यौत गई धूप
चारण भाटों से गायें विहग वदना
कंगूरे जगर-मगर चमकाती धूप
शुरू हुयी आंगन में ता-ता थैय्या

रण भेरी से 'मिल' के साइरन बजे
चिमनी से लाल धुँआ दूर तक उठे
शोर सुनो युद्ध नया फिर शुरू हुआ
जीत है सुनिश्चित हौंसले बड़े
बढो ! बढो ! रुको नही ओ रे ! सिपहिया

●●●

रमेश शर्मा

जन्म—१९४८, कानपुर (उत्तर प्रदेश)
शिक्षा—बी. एस-सी.
संप्रति—जे. के. संस्थान, कोटा में कार्यरत।

हिन्दी-उर्दू शायरी मे परम्परावादी और घिसी-पिटी पुरानी उपमाओ एव प्रतीको के (जो कोई भी नवीन अर्थ देने मे सार्थक नही होते) इस्तेमाल के विरोधी, अपने आस-पास बिखरे हुए सामयिक विषयो, नवीन प्रतीको को सहज रूप से प्रयोग करने वाले कवि रमेश शर्मा के नजदीक 'कविता' दिल-बहलाव का स्वान्त. सुखाय: साधन नही वरन् शोषित-पीडित सर्वहारा की पीडा को व्यक्त करने का सशक्त साधन है।

वर्गो मे विभाजित समाज मे शोषित तबके के हाथों वर्तमान परिस्थितियो मे जीवित रहने के कम से कम अनिवार्य साधनो का भी न होना परिणामत. बढती भूख-प्यास, बेकारी व गरीबी का हल आपके ही शब्दो मे—

"जीने का हक़ दे न सके जो उस सत्ता को तमाम करो!"

—रमेश शर्मा

आस्था

हाथ खाली ही सही मगर आप उठाये रखिये
लाख दल-दल हो मगर पाव जमाये रखिये
कौन कहता है, जल रुकता नही चलनी मे ?
बर्फ के जमने तलक आस लगाये रखिये

•

हम

भटकती रही जिंदगी दर-ब-दर जख्म रिसते रहे, दर्द बढता रहा
दोस्तो के भी अहसान होते रहे उम्र घटती रही, कर्ज चढ़ता रहा
इस घिनौनी व्यवस्था मे रोटी नहीं बिछौना नहीं, तन पे कपड़ा नहीं,
पेट हमको बगावत सिखाता रहा, भूख लड़ती रही, फर्ज लड़ता रहा

•

चेहरे

चेहरे के एक आगे चेहरा
चेहरे के एक पीछे चेहरा
पहरे के एक आगे पहरा
पहरे के एक पीछे पहरा

आम-आदमी लड़े कहाँ तक ?
एक व्यवस्था हो तो !
तेरी-मेरी, इसकी-उसकी
एक विवशता हो तो !

सुनते-सुनते तू भी हो गया
मैं भी हो गया बहरा
चेहरे के एक आगे चेहरा

कड़ी धूप होती है सर पर,
तब रोटी मिलती है
खून-पसीना बोते हैं, तब
फसल खड़ी होती है

अपने हाथ मे कर्ज का रुक्का
उनके सर पर सेहरा
चेहरे के एक आगे चेहरा

जीवन सारा कैद हो गया,
फाइल और दफ़्तर में
बीबी-बच्चे बाट जोहते,
कब पापा आयें घर मे ?

समय मुसाफिर बढता जाता
किसके ख़ातिर ठहरा
चेहरे के एक आगे चेहरा

विश्वास-आस्था, प्यार-मुहब्बत,
पल-पल, छिन-छिन टूटे

बिना छतो के घर मे भैय्या !
बरतन टूटे-फूटे

हो सकता है उधर उजाला
इधर अंधेरा गहरा
चेहरे के एक आगे चेहरा
पहरे के एक आगे पहरा
पहरे के एक पीछे पहरा

•

काम करो...

काम करो ! कुछ काम करो !!
सुबह का तारा हमे जगाये
उठो-उठो ! कुछ काम करो !!

कितने जीवन फुटपाथो पर भूखे ही सो जाते है
छोटे-छोटे बच्चे है जो मुँह खोले रह जाते है
इनके भी अधिकार इन्हे दो इनका इन्तजाम करो !
... .कुछ काम करो !!

झूठे वादो, कोरे नारो से अब पेट नही भरने का
जुल्फो, चांद, सितारो से अब त्रास नही हरने का
नई क्राति के जांबाजो ! मनुहार नही सग्राम करो !
........कुछ काम करो !!

मंहगाई को उखाड़ के फेको और भुखमरी दफ़ना दो
नई चेतना, नई आस्था के पैरो मे पख लगा दो
जीने का हक दे न सके जो उस सत्ता को तमाम करो !
........कुछ काम करो !!
सुबह का तारा हमे जगाये उठो-उठो कुछ काम करो !!

•

जिन्दगी

भूख की सलीब पर टंगी हुई है जिन्दगी,
जैसे फटी कमीज सी फटी हुई है जिन्दगी

अभाव के दल-दल हैं जिस ओर देखिये !
न जाने किस ज़मीन पर टिकी हुई है जिन्दगी

कितने मुनहरे वर्क थे जो फट गये जो खो गये,
अब तो फटी किताब सी पड़ी हुई है जिन्दगी

अहसान, घुटन, वेवसी, लाचारियां, बदनामिया,
कितने हसीन तोहफों से सजी हुई है जिन्दगी

इस तरफ खडी हो तुम और उस तरफ सच्चाइया,
दो रास्तों के बीच मे खड़ी हुई है ज़िन्दगी

इन तल्ख़ उदासियों मे यहां कौन आएगा ?
अब किसके इन्तज़ार मे रुकी हुई है ज़िन्दगी

•

जरूरत है !

हुस्न-ो-इश्क की बातो से क्या फायदा ?
सच पूछो तो इसकी जरूरत नही !

जरूरत है, भूखो को रोटी मिले
जरूरत है, नगों को लगोटी मिले
जरूरत है, वे-सहारो को सहारा मिले
जरूरत है, जीने का इशारा मिले
जरूरत है, तन्हा को साथी मिले
जरूरत है, बाती से बाती मिले
जरूरत है, राही को मजिल मिले
जरूरत है, कश्ती को साहिल मिले
जरूरत है, लाशो को कफन तो मिले
जरूरत है, इंसा मे लगन तो मिले

बेशक न रहने को मकाँ ही मिले
ज़रूरत है, खुल के हवा तो मिले

नाज़नीनो की घातों से क्या फायदा ?
सच पूछो तो इसकी ज़रूरत नही !

नई पीढ़ी के सपनो की बातें करें
सब अपने है अपनो की बातें करें
जो अमिट हैं उन उजालो की बातें करें
आओ ! सुलगते सवालों की बातें करें
गलियो, सडको, फुटपाथो की बातें करें
जिनमे ग़म ही पला हो उन आँखो की बातें करें
जो हवा मे तनी हो उस मुट्ठी की बातें करें
ये हमारी है हम इस मिट्टी की बातें करें

झूठे वादो-सौगातो से क्या फायदा ?
सच पूछो तो इसकी ज़रूरत नही !

ज़रूरत है, भूखो को रोटी मिले !

•••

ठाकुर दत्त 'विप्लव'

जन्म—२० जून, १९४६
शिक्षा—ए. एम. आई. ई.
सम्प्रति—डी. सी. एम. संस्थान, कोटा में कार्यरत।

प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक 'विप्लव' अपने आप में एक 'पार्टी' सा बन जाने तथा एकजुट होकर कुछ करने मे विश्वास रखते है। सस्कारगत विरोधाभासो से गहरे सघर्ष के पश्चात एक निश्चित विचार-धारा तथा मानसिकता का निर्माण करने वाले साथी 'विप्लव' वर्ग-सघर्ष में एक मज़बूत भूमिका निभा रहे है। उनका लेखन एव सोच सर्वहारा की पक्षधरता करता है।

"मेरे सामने एक निश्चित उद्देश्य है, जो सत्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति तक मैं प्रत्येक उपलब्ध हथियार का उपयोग करना चाहता हूँ। अब चाहे वह बन्दूक हो या कविता।"

—ठाकुर 'विप्लव'

आदमी

आदमी ! सिक्का है, औज़ार है
आदमी ! बिकता सरे-बाज़ार है
आदमी ! उत्पादन है, कच्चा माल है
आदमी ! ताबाँ, पीतल, इस्पात है
आदमी ! रुई है, कपास है
आदमी ! रोटी है, साग है
आदमी ! हुकुम है, हुजूर है
आदमी ! अन्नदाता है, माई-बाप है
पर होंठ हिलें तो
और भेद खुलें तो

आदमी !
आदमी ! हाड़, मांस, चाम है
आदमी ! स्पदन और सांस है
आदमी ! इच्छा है, विश्वास है
आदमी ! भूख है, प्यास है
तूफान है, आग है
आदमी ! सिक्का है, औज़ार है !!
आदमी ! बिकता सरे-बाज़ार है !!

•

मन नहीं लगता

(इमरजेंसी के दौरान लिखी गई एक कविता)

ये पीले फूलों और
हरियाली से लदे खेत
ये दूर-दूर तक फैले
सपाट चट्टानी नगे पहाड़
मेरा मन नही लगता

इन सब के नीचे जमीन होती है
ज़मीन, जिस पर घर होते है
घर, जिसमे आदमी होते हैं
आदमी !
कि जिसके आंते होती है
ज़ुबान होती हैं, आँखे होती है
आँखें !
जब बुझी-बुझी हो (तो)
मेरा मन नही लगता

ये दूर तक फैले,
पीले फूल और हरियाली लदे खेत
सपाट चट्टानी नंगे पहाड़
मेरा मन नही लगता

•

मई दिवस पर

कसमसा कर
जब भी मैं हाथों की
जंजीरों की ताकत
नापता हूँ,
तोड़ने की एक और
कोशिश और खबर........
"पंत नगर में
दो सौ मजदूर मारे गये" ....

मेरी आंख की
पुतली भी ऊपर उठी
तुम संगीनें लेकर दौड़े
मैंने केवल मुट्ठियां तानी
तुम सेवर-जेट ले उड़े
पर, जब भी मेरा
तन भुनता है
मेरा सीना तनता है
तुम, जब भी मेरे खून से
होली खेलते हो
धरती पर एक
शब्द बन जाता है
आजादी !

ठीक इसी दिन,
बीचों-बीच 'हे' मार्केट स्क्वायर की
धरती पर जमे थे
अंकुराये लाल शब्द 'आज़ादी' !

तुम्हें याद होगा

वही खून लिख रहा है
'कंबोडिया, वियतनाम ग्रौर ग्राजादी' !
वही लिखेगा—
'रोडेसिया, जिम्बाब्वे ग्रौर ग्राज़ादी' !!
वही, हाँ ! वही लिखेगा—
'ग्ररब, ईरान, दिल्ली ग्रौर ग्राज़ादी' !!!

●●●

शिवराम

सम्प्रति—बारां टेलीफ़ोन एक्सचेन्ज में आर. एस. ए.।

मार्क्सवादी विचारधारा के प्रखर व्याख्याता साथी शिवराम आलोचना की प्रतिभा से जितने सम्पन्न हैं, रचनाकार के रूप मे उतने ही स्थापित भी। कुशाग्र बुद्धि से सम्पन्न शिवराम वस्तु सत्य को तर्कों की कसौटी पर कस के ही ग्रहण करने के अभ्यासी हैं। नाटककार के रूप मे जन-समस्याओ को इन्होने बड़े सहज ढंग से मचित करने मे उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। ये एक अच्छे संगठनकर्त्ता भी है, बारा से प्रकाशित "अभिव्यक्ति" का सम्पादन भी आप ही कर रहे है।

"कविता मेरे लिए अभिव्यक्ति का अपेक्षाकृत नया माध्यम है, जहां मुझे लगता है कि मेरे नाटक बात को ज्यादा सहज ढंग से प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं, वहां मुझे कविता का सहारा लेना पड़ता है। इसलिए मेरी कविताएं सहज और दो टूक होती हैं।"

—शिवराम

समाजवाद लायेंगे

समाजवाद लायेंगे !
समाजवाद लायेंगे !
रूस में तो बीत गया
चीन मे है ही नही
अमरीका से लायेंगे
इंगलैंड से लायेंगे
जापान से लायेंगे
और, किसी ने भी नही दिया
तो, बिरला जी की फैक्ट्री में बैठ के बनायेंगे।
समाजवाद लायेंगे ! समाजवाद लायेंगे !!

सामंतो के हाथ जोड
किरोड़ियो की दण्डवत लगा
तस्करों से सौदा कर
जनता को ठोक–पीट
जनतंत्र बचायेंगे !
गरीबों की छाती पर
मँहगाई का हाथी बिठा
पीठ पर चढा उसकी, समाजवाद लायेंगे ।
समाजवाद लायेंगे ! समाजवाद लायेंगे !!

कुछ आश्वासनों के जोर से
कुछ नारेबाजी के शोर से
कुछ टैक्सो की मार से
कुछ बोनस को डकार के
वेतनो को जाम कर
गरीबी हटायेंगे
हवन यज्ञ करायेंगे
बेरोजगारी मिटायेंगे
जमाखोरो से चन्दे ले, जमाखोरी मिटायेंगे ।
समाजवाद लायेंगे ! समाजवाद लायेंगे !!

श्रमिक जुलूस भूनेंगे
छात्र जुलूस रौंदेंगे
हरिजन बस्ती जलायेंगे
जरूरत पडी तो
एक—दो—दस नही
सैंकडो बेलछी—पंतनगर बनायेंगे
सामराजी शोषण को
मिटाने के वास्ते
हाथ जोडे पास अमरीका के जायेंगे ।
समाजवाद लायेंगे ! समाजवाद लायेंगे !!

अब तक समाजवाद क्या ?
उसका बाप भी आजाता भाई !

पर नहीं लाने देते हैं
ये मेहनतकश कामचोर
सबसे पहले इन्ही को
ठिकाने लगायेंगे
किसान मजदूर ही
करते हैं शोर-ो-गुल
समाजवाद लाने को इन्हें जेल में पहुँचायेंगे।
समाजवाद लायेंगे ! समाजवाद लायेंगे !!

जेलें जो कम पड़ी
तो उसकी फिकर नही
सारे हिन्दुस्तान को
जेलखाना बनायेंगे
चीखो-चिल्लाओ मत !
सड़कों पे आम्रो मत !!
बात सुनो गौर से
काम करो जोर से
हम पर विश्वास करो
भाषण पर ध्यान धरो
हिटलर न ला सका
तो क्या हुम्रा आश्चर्य ! हम जरूर लायेंगे।
समाजवाद लायेंगे ! समाजवाद लायेंगे !!

•

ठेले की चाल—दिखाएगी कमाल !

ठेले की चाल
दिखाएगी कमाल
ओ ! कुली हम्माल
मार बाजू पे ताल

ओ ! हाली-मजूर
क्यो थके चूर-चूर

कहदो पुकार !
—नही सहेंगे अत्याचार

छोटे दुकानदार
वन मजूरो के यार
मँहगाई की मार
पड़ रही वेशुमार

ओ ! गाँव के किसान
घेरा मंदी ने आन
ले हँसिया उठा
ठान ले ये ठान
बदले राज बेईमान

दर्जी की मशीन
चले दिन रैन
फिर भी कहाँ
कर्जे से चैन

धोबी की भट्टी
जले लगातार
वच्चे वीमार
बनियान तार-तार

ग्रो ! चाय वाले रामू !
ग्रो ! साग वाले श्यामू !
ओ ! नाई रहमान !
ओ ! मोची सुलतान !
मुट्ठियाँ ले बाँध
सीना ले तान
मत रहे बेजुवान
रख खुले कान
वोलने की वात
नही होंगे यूँ बर्बाद

ग्रो ! विद्यार्थी जवान

कहाँ है तेरा ध्यान
शिक्षा जा रही बेकार
सोच मेरे यार
पढ लिख के भी क्यों
बिना रोज़गार

ओ ! मजूर सफेदपोश
तेरे भी उड़ रहे हैं होश
उधर वेतन है कम
इधर खर्चे का ग़म

बच्चो का दूध
कहाँ रहा सूख ?
क्यो भूखा हिन्दुस्तान ?
क्यों नगा हिन्दुस्तान ?
क्यो विदेशी कर्ज़ ?
मंदी तेजी का मर्ज़ ?
क्यों लाठी गोली जेल ?
पैसे डंडे का मेल ?
मुफलिसी के मारे
मर रहे हैं सारे
भूखे पेट की कुलबुल
खिलाएगी कब गुल ?

आसमाँ का रंग
कब होगा लाल ?

ओ ! कुली हम्माल
मार बाजू पे ताल
ठेले की चाल
दिखाएगी कमाल

●●●

हरि भक्त

जन्म—मार्च, १९५६
सम्प्रति—सरकारी विभाग में लिपिक।

मैं जिन्दगी मे सिर्फ तीन 'संज्ञाएं' मागता हूँ—
सवेदना, सचेतना और नवीनता !
और कविता अथवा कहानी और रंग !
ज्यों आँखो के भीगे हुए बिम्ब—
छटपटाते परिचय

किन्तु क्या करुणा के स्वर छू सकूंगा !
मुझे बहुत प्यार है उस सपने से—
जब विश्व के घायल पैर,
हरी–ओस की आधुनिक बूँदों
को छुएंगे—
और/कविता के बारे मे—(इतना ही)
कविता !
जिन्दगी के लिए
और जिन्दगी—
जिन्दगी के लिए…… ….

•

गजल

एक तकिया—सुख सिरहाने हैं
और कम्बल—दर्द पायताने हैं

स्वप्न हैं सफेद कपास गोले
रुई–रुई–रेशे लिवास सिलाने हैं

गीले लाल कतरे रक्त उड़ाने
और कहाँ तक पख फड़फड़ाने है

घोड़े के खुर सीने की साँस पर हों
पीठ दोहरी कर कंधे बिछाने है

दोपहर दिन के कधे पे सवार
धूप के अक़्स अभी चिलचिलाने हैं

आँसू चीख़ने दें, उस किनारे तक
शेप प्रति-ध्वनि-अंक चिल्लाने हैं

•

आधी रात के बाद

एक ठण्डे हाथ की ज़द में ये शहर
हर शहर की एक आत्मा होती है

एक भेड़िया जंगल से आया
कुत्ता एक अच्छा जानवर
गाय हमारी माता है

गुलमोहर के पेड के नीचे सोना ठीक नही
आप चौराहे पर जाइये
पुलिस का कुत्ता आपका इंतज़ार करेगा
सुरक्षा से रात भर हवालात में रखेगा

एक बीड़ी का बण्डल आठ आने मे
चाय तीस पैसे की आती है

गुज़रे वक़्त को कोई अपना नही कहता
वह बड़ा दुखी था
आइंदा वक़्त अपना है—
आपको किसी का इंतजार तो नही !

•

संकेत

एक डण्डा/चुप खड़ा/देखता है
हिलने का सकेत देता है
चुप्पी का नाम—
भय और असुरक्षा !
हालांकि मैं शान्त हूँ
किन्तु क्रूरता वहाँ इच्छित है
मैं वार नही करता हूँ
तुम मुझे मार डालोगे

असुरक्षा का विकास एक सगठन होना चाहिए
मेरे मित्रो !
इस चुप्पी से हम सब भयभीत है
लेकिन हवा के कुछ कण
मुखबिर बन जाते है
नही !

सूँघो !
हवा मे जहर नही बहता/पानी बहता है
एक समय-सापेक्ष-निर्पेक्षता
हमे फ़कीरी नाम देती है
इसलिए—
मेरे बायें हाथ की अंगुली से रक्त बहता है
दाया देखता रहेगा
दायां हाथ कट जाता है
कंधा सोचता है—हम नही है
जब हम सोचते हैं/देर हो जाती है

एक डण्डा—
चुप खड़ा देखता है
हिलने का सकेत देता है....

•

इतिहास

कितनी सभ्यताएं/रेत के चिह्न
जल लहरों ने धो डाले
और कितने बुद्ध, जीसस, कृष्ण देखेंगे स्वप्न
गांधी और मार्क्स के आकार
अंकित होंगे/आदिम जीवाश्म
पृथ्वी की पर्त पर एक पर्त और
नव–ग्रहों की आविष्कारक रेखाएं !

किन्तु पृथ्वी के संस्कार प्राचीन है/
जब कभी इतिहास नहायेगा
पृथ्वी नंगी हो जायेगी
निर्ममता और निर्लज्जता ओढ़कर

•

उपसंहार

युद्ध की भूमिका जरूरी है
क्या युद्ध जरूरी है !
नहीं—
क्योंकि युद्ध अवश्यम्भावी है
युद्ध एक शस्त्र है
उस कारखाने में
हिंसा का निर्माण—
अहंकार और द्वैत
और अस्तित्व का निर्माण
तू करता है
उसके बाद जो बचती है—प्रस्तावना !

मशीन को (हमारे) रक्त से सींचा जाता है
शोषण रिसता है
जुल्म बिखर जाता है
जबड़े घिस-घिस कर पैने हो जाते हैं
कड़ियाँ पी-पीकर प्यास
चिकनी हो जाती है

उसके बाद जो बचती है—प्रस्तावना !!

•••

अम्बिका दत्त चतुर्वेदी

शिक्षा—बी. ए. अंतिम वर्ष
सम्प्रति—शिक्षा विभाग, कोटा में कार्यरत।

राजस्थान की सख्तजान मिट्टी में जो गठन अम्बिका दत्त को मिल चुका है, वह उनके सोच की धारा के आंचलिक–हाडौती में ही स्वछद बहने के मूल मे है। कर्मठ अम्बिका दत्त बहुत स्पष्ट ढग से सोचना चाहते हैं, स्पष्टीकरण भी इन्हे सम्पूर्ण चाहिए।

"चन्दन जब सिर्फ़ मंदिरों में देखता हूँ और रेशम तार-तार सपनों में तो हथेली पर अंगारा रखकर महसूसने के विकल्प में कविता लिखता हूँ।"

—अम्बिका दत्त

बाजार

बेमतलब की बात
करते हो। तुम सब लोग
आदमी की कोई जाति नही होती।

तुम आईनासाज हो न !
तुम्हे तस्वीर और फितरत —
चेहरे की झुरियों को। छूकर देखने से क्या !
तसवीर की लम्बाई चौडाई देखकर
फ्रेम किया जा सकता है।
आंकी जा सकती है कीमत।

....और कमाल कर दिया। अब तो
ऊँच–नीच के दर्जे
आदमी के जिस्म से
उठने वाली गंध से/दे दिये

पैट्रोल की गंध का दर्जा—ऊँचा !
कैरोसिन की गंध का नीचा है !!

•

छोटी लकीरें

छोटी लकीरे
अक्सर सीधी होती है ।
पर,
कितना दर्द होता है !
जब ये बढ़ कर वक्र हो जाये
और
कोई अलग-अलग/टूटी लकीरों को
सीधा साबित करे !

टूटना बुरा है
लगड़ाना उससे भी बुरा है ।
पर, बैसाखियों के सहारे
लंगड़ा कर घिसटने से भी ज्यादा
बुरा है—
बूढे बरगद की छाया मे पलकर
बौने रह जाना !

•

कविता

दरवाज़े !
कुछ समस्याएं हैं
दीवारों के अपने/कुछ प्रश्न हैं
घर मे घुसते ही
तराशे हुए/छोटे-छोटे टुकड़े
हथेलियों पर रखकर
हाथ आगे फैला लेते हैं

मैं फिर लौट आता हूँ
सड़क पर
जो बेमतलब नहीं बोलती
जो बेमतलब नहीं कोंचती
एक राहत की सांस पाने को
और सुस्ता लेता हूँ
पार्क मे बिछी
किसी भी पत्थर की बैन्च की गोद मे
सिर रखकर।

•••

पी० राना 'कसक'

जन्म—१९४८, उन्नाव, जि० कानपुर (उत्तर प्रदेश)
सम्प्रति—जे. के. संस्थान, कोटा में कार्यरत।

भारतीय जनमानस की गहराइयों में पूर्णतः रंगे-डूबे सशक्त हस्ताक्षर नेपाली रक्त के भाई राना 'कसक' हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं पर समान अधिकार रखते हैं।

पीड़ा तथा त्रास, जो इन्होंने भोगा है या दूसरों को भोगते देखा है। इनकी कविता का विषय है।

"कविता मेरे करीब उस पुल के समान है जो मुझे मेरी मातृ-संस्कृति तथा व्तक परिवेश की समन्वय दृष्टि देता है।"

—'कसक'

तीन गजलें

(१)

श्वांस का तन, टूटता-सम्बल हुआ,
राह-पग, कांटो का इक जगल हुआ।
सपने गढे थे भावना—विस्तार के,
जब समय ने बाँह थामी, छल हुआ।
कोर में ठिठुरी-सी, बैठी जिन्दगी,
आदमी, सिकुड़ा-फटा कंबल हुआ।
आयु सब कटती रही प्रतिद्वन्द में,
मानवी-उद्देश्य क्या? दंगल हुआ।
कैसे बांधें? हम रुदन को दोस्तो,
बहती गगा का भी, खारा जल हुआ।
क्या हुआ, यूँ ही बुहारो जिन्दगी ऐ 'कसक'
सूना आँगन किसी का नहीं, यदि संदल हुआ।

•

(२)

किस्मत का फ़ातिहा पढ़ू या नसीब का,
हर बार फेल होता है, बेटा गरीब का।

रंगो-उसूल-ओ-खू़न की, दे-दे के दुहाई,
तोड़ा है आदमी ने, रिश्ता क़रीब का।

करते जो, बडे शोर से, इल्मो-ग्रदब की बात,
बेचा है उन्ही लोगों ने, नग्मा अदीब का।

ता'रीकियों को पी न सकेगी, सहर की धूप,
है चेहरा गिरफ़्तार, हर माहे-हबीब का।

नफ़रत के घूंट लेते रहे, ख़ामोश इधर हम,
बढता रहा तूफ़ान, उधर से रकीब का।

छीटे लगे दीवार, मिटाओ नही 'कसक',
लायेंगे रग देखना, इक दिन सलीब का।

•

(३)

इक इंसा कल बेचारा, मर गया फुटपाथ पर,
सोचता, बस सोचता, रह गया सारा शहर।

और शायर ने उगाया, कल हथेली पे अनाज,
जैसे कोई ये अजूबा, कर रहा हो बाजीगर।

एक खादीपोश ने, चूमा है हरिजन-जात को,
जानें क्या पैगाम लाए, उगते सूरज की सहर।

सीख लेते गर ज़मी पर, इन्सानियत का सुलूक,
क्या जरूरत थी 'कसक' ढूंढें सुकूं जा माह पर।

•

उपलब्धि और आजादी

तीस वर्षों की उपलब्धि
एक, नही
ससद के कोलाहल या
राजपथ की हलचल तक
योग से आयोग तक
या
कीचड़ उलीचने से
जूते उछालने तक

खूब !
बहुत खूब !!
हम कितने आजाद है ·
फड़फड़ाते टखनो से—पखों से
रोटी से
कपड़े से
घर से

•••

गंगा सहाय पारीक

जन्म—२ अक्तूबर, १९५०

शिक्षा—स्नातक

सम्प्रति—इन्स्ट्रूमेंटेशन लि०, कोटा में जूनियर आफ़िस-असिस्टेन्ट के पद पर कार्यरत।

"मन कई कारणों से छटपटाता है। इसी छटपटाहट को शब्दों में बांधने की कोशिश में लिख लेता हूँ। अब यह बात अलग है कि छटपटाहट व्यक्तिगत कारणों से हो अथवा सामाजिक परिवेश से।"

—गं० स० पारीक

वोट–क्रान्ति

एक ला–इलाज बीमार
वैद्यजी के पास पहुँचा होकर लाचार
"मर्ज़ तीस वर्ष पुराना है
पेट की रोटी और न रहने का ठिकाना है
कोई दवा हो तो बतलाइये
मेरी जान बचाइये!"

वैद्यजी ने कहा—"हो सके तो एक दवा करलो
आधे कांग्रेसी–वायदे, आधे जनता–पार्टी के वायदे
दोनों को मिलाकर पत्थर पर पीसलो
कपड़े से छानकर पानी में घोलकर पी जाओ!
पचा लिया तो—
१९८२ तक जी जाओगे
एक और वोट–क्रान्ति कर जाओगे

एक कविता

जंग खाया जीवन/लोहे की सलाखों
में बंद आदमी
बंट जाता है दो भागों में

हाथो के सहारे भाग्य रेखाएं बनती है
जीवन रेखा को मिलता नही किनारा

आदमी पुरुषार्थ का पुतला है
फिर निष्प्राणवान क्यो ?
खोजने होगे इसके कारण
शायद इस सदी की यही है
सबसे बडी त्रासदी

हो सके तो मेरे प्रभु !
आने वाली पीढी के हाथो मे
सिर्फ दो ही रेखाए खीचना—
जीवन–रेखा । और स्वास्थ्य–रेखा !!
जिससे आदमी को जीने का
किनारा तो मिले

●●●

राम

जन्म—१ मई, १६५७
शिक्षा—इन्टरमीडिएट
सम्प्रति—राजस्थान पत्रिका से सम्बद्ध
निवास—कोटा ।

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में एक नया हस्ताक्षर, जिसने अपनी दृष्टि तथा सूक्ष्म विश्लेपण शक्ति से अल्पकाल मे ही नगर के साहित्य जगत में एक बेहतर स्थान बना लिया है ।

भविष्य मे बहुत सी सम्भावनाएं लिए भाई राम एक प्रबुद्ध दृष्टि से सम्पन्न नवयुवक है। गम्भीर तथा अधिकतर चुप रहने वाले भाई राम यदा-कदा ठहाका लगाते है तो आकाश सिर पर आ जाता है ।

"मुझे चेहरों पर पड़े नकाबों के आर-पार देखने की आदत है। जब कभी भी मैं सफल हो पाया हूँ तो नकाबों के पीछे छिपी वास्तविकता का रहस्योद्‌घाटन अपनी कविताओं की भाषा में करता हूँ और इस प्रक्रिया में रेत के मैदानों तथा कांटों भरे जंगलों से होने वाले साक्षात्कार से अपरिचत भी नहीं। क्योंकि मैं नहीं सोचता कि मैं अकेला हूँ या प्रतिबद्धता से डरने की जरूरत है।"

—राम

परिचय

मेरे जन्म की वो काली रात
अंधेरे से निकलने के लिए
रोशनी की चाह मे
आकाश को देखा भर था

सज्ञाहीन हाथों ने
उठाकर गहरी खाई मे फैंक दिया
मैं अब चीखता हूँ—
चीखता हूँ—

और अधिक चीखता हूँ
और सुनता हूँ प्रतिध्वनियाँ !

लेकिन, मैंने पाये हैं
विश्वास के पुष्ट बाजू
और बहरी दिशाओं के बावजूद
एक दिन उनींदे लोग
मेरी चिल्लाहटों में अपना स्वर सुनेंगे

फूटेंगे अंधकार के वो सर्जक बीज !
उगेंगे लाल-हरी आग के पत्ते
छुएंगे बहुत से फूल शिखर
उजाला ही मेरा अस्तित्व होगा

हे संगठित विश्व !
यह तेरा परिचय तो है !!

वह जब पैदा हुआ
शक्ल से न सही—
खरगोश-सा रहा होगा !

सबने चाहा होगा,
उसे सहलाना
गोद में उठाकर
एक चुम्बन देना !
पर
इस बीच/कुछ नहीं हुआ—
वह जब मरा,
लोगों ने कहा—
चलो—एक भेड़िया तो गया !

•

प्रश्न

यह सच है !
रोटियाँ आग पर ही सेंकी जाती हैं

लेकिन आग !
जब पेट में लगती है—
जीते-जी ठण्डी चिता मे
जलने का होता है एहसास !
कुछ को छोड़कर सबको हुआ है !

दोस्तो !
प्रश्न सामने खड़ा है—
आप उत्तर दिये बिना जाते है ?
निश्चय ही सारे रास्ते
ठण्डी चिता को जाएंगे,
क्या आप हल खोज रहे है ?

●●●

नागेन्द्र कुमावत

जन्म—२६ जुलाई, १९५५
शिक्षा—स्नातक
सम्प्रति—उप-पुस्तकालयाध्यक्ष, डियोजनल लाइब्रेरी, कोटा।

समग्रता से उभरते हुए हस्ताक्षर नागेन्द्र जी से भविष्य में काफी सम्भावनायें हैं। आपकी विशिष्टता, आपका साहस तथा परिवर्तित परिवेश को आत्मसात करने की क्षमता है।

"व्यवस्था के जाल में फंसा आदमी (जहाँ सुबह उठने से रात देर तक जागने का क्रम निश्चित है) तनिक भी हीला-हवाला नहीं कर सकता। उसके पास इसका कोई विकल्प नहीं कि वह जरा भी चूका तो *दिन की दिहाड़ी से गया। नौकर-शाही का शिकंजा (हृदय-हीन मशीन)* कसता जा रहा है जिसके लिए किसी की भी 'दुर्घटना ग्रस्त टांग' का कोई महत्त्व नहीं। जनाब! महिनों 'टांग' के बदले कागज दौड़ते रहेंगे। असहाय-सा श्रमिक बिना वेतन के जिन्दगी को घसीटने का प्रयास करता *रहेगा"—और यही जगह है जहाँ नागेन्द्र जी की निगाह टिकती है* और अपने लिए कविता का विषय चुन लेती है।

जब कविता जुल्फों के घेरे के बाहर आकर शोषित-पीड़ित श्रमजीवी के साथ अपना जुड़ाव करती है तभी पैदा होती हैं 'एक सुबह *और' व 'आत्म-बोध' जैसी रचनायें। यह 'जुड़ाव' जब शोषकों के खिलाफ* संगठित होकर हर तरह के दमन का मुकाबला करते हुए अंतिम विजय के क्षणों तक पहुँचता है तब 'प्रयाण' जैसी रचनाओं का सृजन एक 'उपलब्धि' बन जाता है।

—नागेन्द्र कुमावत

एक सुबह और...

झौंपड़ी के दरवाजे से
जो प्लास्तर चढ़ी टाँग

झाँक रही है
वो श्रमिक तन के साथ
संयुक्त है

यह शरीर एक महिने पूर्व से
किस्मत को टूटी टाँग से जोड़े
खाट पर
बे-बिस्तर पडा है
इसे पिछले पूरे माह की पगार
नही मिल सकेगी !

आज दूसरे माह की शुरुआत मे
पहली सुबह है !

•

प्रयाण

गंतव्य की ओर
बढ़ने के प्रयास मे अग्रसर
खडी दीवार पर चीटियों की
काली-भूरी रेखा को
कई बार व्यवधान वर्तमान कर,
जीवित खण्डो मे विभक्त करते हुए
चीटी-चीटी कर दिया गया

परन्तु हर बार
फिर वही
छोटे-छोटे खण्डों से
आपस मे संयुक्त-सी
काली रेखा :
........चीटियाँ !
वही राह, वही दिशा,
वही क़ाफिला—

नही है आश्चर्य !
लगन+संघर्ष+ध्येय
(कुल मिलाकर)
= मंजिल की ओर !

•

आत्म-बोध

आज सिर्फ दो (तरह के) ही
अख़बार लेकर
स्वयं से ज्यादा गिरी हालत की
साइकिल को तन का सामर्थ्य/देते हुए—
नगर की गलियों से
मकानो के दरवाजो तक
पहुँचना है !

आज अख़बार न बाँटने को
जी 'मजबूर' करता है !
कहता है—इन अखबारो की किस्मत को
कल के साथ भी तो
जोडा जा सकता है !
तभी यादो की गुत्थी से
एक प्रश्न सुलझकर/गिरता हुआ
फिर मेरे मस्तिष्क को
कुछ सोचने के लिए
कर देता है—बाध्य !
—"बापू लौटते वक़्त चने ले आना........
भूलना नही !"
और मन के किसी कोने से
उठती है आवाज/मुझे धिक्कारती हुई
सैंकड़ो गलियों के आभूषणो से

कर देती है अलङ्कृत/
मैं गंतव्य की ओर बढ़ जाता हूँ
क्योंकि आज का काम
आज की उदरपूर्ति के साथ
बच्चे के प्रश्न का उत्तर होगा/
और 'कल' के भविष्य का
मेरे लिए
मेरे परिवार के लिए
समाज और देश के लिए
निर्णायक होगा !'

•••

राजा राम बंसल

निवास—ग्राम–शाहाबाद, जिला–कोटा।

जीवन के बीस-बाईस वर्षों से पलटकर पूछता हूँ या उन्हे इतिहास के नाम पर पढता हूँ........लेकिन इतना धुँधला चेहरा मेरा नही है—तुम सबका है अथवा मैं हूँ !

अतीत को न भूलते हुए, वर्तमान को नहलाने-धुलाने और भविष्य को सुन्दर लिबास देने के सघर्ष के नाम पर स्वयं से सिर्फ ईमानदारीपूर्ण प्रतिबद्धता की चाह रखता हूँ....

तब मैं निश्चय ही परिचय दे सकूगा, जब आइनो की धूल पोछ सकूगा !

उम्र के पैबंद

जब भी आदमी को भूख लगती है
सूर्य शर्म से मुँह छिपा लेता है
पाताल में चला जाता है/कही ईश्वर
देवताओ का अस्तित्व/हो जाता है धूमिल

सिल जाते है—वाचाल होठ
औ' आँखो का पानी सूख जाता है

सिर के ऊपर का आसमां
बड़ी तेजी से कँपकँपाता है
पैरों के नीचे की ज़मीन
भूकम्प के मानिन्द डोलती है

भीतर, टूटने की प्रक्रिया मे—साहस की पपड़ियाँ
बाहर—उम्र की चादर मे
जिन्दगी, दिनों के पैबंद जोड़ती है !

तुम और वे

एक सुबह—
जब वह नींद से जागा
उसने पाया—
उसकी दोनो टांगें जांघों से गायब हैं !

अब वह कैसे चलेगा ?

वह हैरान रह गया—
एक छोटे अरसे में
बिना कोई दुर्घटना हुए
ऐसा—कैसे हो सकता है !

और फिर, इलाज के/उबा देने वाले/लम्बे सिलसिले
के अख़ीर में
डाक्टरों ने उसे एक विशेष संज्ञा दी।

पड़ोसी, परिचित और घर आये मेहमान
रोटी के कौर के साथ
उस संज्ञा को चबाने लगे
धीरे-धीरे/किसी तरह पचाने लगे !

अचानक—
किसी तकनीकी अ-व्यवस्था के तहत
शाम नही हुई,
रात नही हुई,
और सुबह नही हुई
दोपहर, मित्रो ने आकर जगाया....
बताया—
कल की 'देसी' में
'स्लो-पाइज़न' था !

●●●

प्रेमजी 'प्रेम'

जन्म—२० जनवरी, १९४६
शिक्षा—एम. ए.
सम्प्रति—इन्स्ट्रूमैंटेशन में कार्यरत।

हाड़ौती के प्रमुख गीतकार प्रेमजी 'प्रेम' मंच के माध्यम से जन-मानस में अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए हैं। साहित्य की अन्य विधाओं—मसलन नाटक, कहानी और रिपोर्ताज के माध्यम से भी आप अभिव्यक्ति को स्वर दे रहे हैं। प्रेमजी की रचनाओं का प्रमुख स्वर है 'श्वेत श्याम कचनार बदरिया' और 'सांझ आती है किसी गुमनाम औरत की तरह'।

दो गजल

(१)

उम्र कहती, है घड़ी ! मत तेज अपनी चाल कर,
मौत बढ़ती आ रही है हर बला को टाल कर।

सांझ आती है किसी गुमनाम औरत की तरह,
लौटती है बादलों के स्याह चेहरे लाल कर।

क्या कहें बहरों से हम, गूंगों से आखिर क्या सुनो,
इसलिये हम मौन हैं कानों में रुई डाल कर।
जागने का वक्त जब होगा जगा देंगे, सत.,
आप तो निश्चिन्त रहिये चन्द मुर्गे पाल कर।

•

(२)

श्वेत श्याम कचनार बदरिया,
नभ की बन्दनवार बदरिया।

झीलों के दर्पण में निरखे,
निज-मुख का शृंगार बदरिया।

ढलता सूरज आँख दिखाये,
बने सुर्ख अंगार बदरिया।

बरस गई शिखरों के भय से,
हर घाटी के द्वार बदरिया।

चिढ़ा-चिढ़ा ऊँचे वृक्षों को,
पहुँच गई वन-पार बदरिया।

करती है रेगिस्तानों से,
सौतेला व्यवहार बदरिया।

●●●

संकट हरण शर्मा

शिक्षा—इण्टरमीडिएट

सम्प्रति—कनिष्ठ लिपिक, सिंचाई विभाग, कोटा।

कविता को कल्पना की तरह प्यार किया है, किन्तु ज़िन्दगी को सच्चाई की तरह जीना चाहता हूँ। हर तरह के दिन देखे हैं, गड्ढे खोदने, अख़बार बेचने से लेकर मिल में काम करने तक भटके हुए दिन और गड्ढे की तरह खाली रातों को मैंने कई नाम दिये हैं। उन्हें बेरोजगारी के भयकर साल मानता हूँ, क्योंकि मैं यायावरी के विस्तारों के साथ ज़मीन को भी प्यार करना हूँ। वर्तमान नौकरी महज सुरक्षा का अनुवाद तो है किन्तु ज़मीन की तलाश जारी है।

तीन गज़लें

(१)

गिर रही है जिन्दगी इसको संभाल ले,
आयी बला जो सर पे उसको टाल ले।

किसी आदमी का कत्ल हमने नही किया,
चलके आज दिल की हसरत निकाल ले।

परिन्दे पालने से बेहतर है, ऐ! दोस्त,
औरों की आस्तीनो मे कुछ साँप पाल ले।

जीने मे मजा है या मरने मे चैन है,
फैसले के वास्ते, सिक्का उछाल ले।

मुमकिन है लोग पूजेंगे, मायावी मानकर,
चन्द इन्सानी हड्डियाँ झोले मे डाल ले।

ख़ाली है कनस्तर तो परेशा न हो, ऐ दोस्त!
रीती देगची में एक इन्सां उबाल ले।

•

(२)

ढहती दीवारों से कभी बात कीजिए,
फुटपाथ पे बसर कभी रात कीजिए।

फ़लसफा–ए–जिन्दगी लिखने से पहले,
किसी गरीब से जरा मुलाकात कीजिए।

शाही सड़क तो कर चुके, स्वर्ग के मानिंद,
दुरुस्त जरा गलियों के हालात कीजिए।

परिवर्तन होगा किस तरह ये देखना है,
परिवर्तित इस मुल्क के खयालात कीजिए।

तसल्लियों से देश को राहत न मिलेगी,
राहत के लिए कुछ तो इन्तज़ामात कीजिए।

छोड़िये ये जाँच के बेकार से सवाल,
संसद में रोटी के सवालात कीजिए।

इन दियों से तम हरगिज़ न छँटेगा,
सूरज ईज़ाद कर, नव–प्रभात कीजिए।

•

(३)

उनकी लाठियाँ जब भी बरसी,
बे-छत घरों पर या नगे सरो पर।

व्यवस्था के जब भी हुए मशविरे,
निर्दोष चेहरे उछले ठोकरो पर।

वज़ीरों ने जब भी जलसे किए,
फ़ाका हुआ गरीबों के घरों पर।

आवाम फुटपाथ पे सोती रही,
वहाँ शतरंज खेली गयी चादरों पर।

पूजा किये बरसों पत्थरों को,
अब ईमान आया है काफिरों पर।

कितना सिर फिरा था वो वक़्त साहिब,
जब पाबंदियां हुई थी शायरों पर।

•••

संकट हरण शर्मा

शिक्षा—इण्टरमीडिएट
सम्प्रति—कनिष्ठ लिपिक, सिंचाई विभाग, कोटा।

कविता को कल्पना की तरह प्यार किया है, किन्तु ज़िन्दगी को सच्चाई की तरह जीना चाहता हूँ। हर तरह के दिन देखे हैं, गड्ढे खोदने, अख़बार बेचने से लेकर मिल में काम करने तक भटके हुए दिन और गड्ढे की तरह खाली रातों को मैंने कई नाम दिये हैं। उन्हें बेरोजगारी के भयंकर साल मानता हूँ, क्योंकि मैं यायावरी के विस्तारों के साथ ज़मीन को भी प्यार करता हूँ। वर्तमान नौकरी महज सुरक्षा का अनुवाद तो है किन्तु ज़मीन की तलाश जारी है।

तीन ग़ज़लें

(१)

गिर रही है ज़िन्दगी इसको संभाल ले,
आयी बला जो सर पे उसको टाल ले।

किसी आदमी का कत्ल हमने नहीं किया,
चलके आज दिल की हसरत निकाल ले।

परिन्दे पालने से बेहतर है, ऐ ! दोस्त,
औरों की आस्तीनों में कुछ साँप पाल ले।

जीने मे मज़ा है या मरने में चैन है,
फैसले के वास्ते, सिक्का उछाल ले।

मुमकिन है लोग पूजेंगे, मायावी मानकर,
चन्द इन्सानी हड्डियाँ झोले मे डाल ले।

ख़ाली है कनस्तर तो परेशां न हो, ऐ दोस्त !
रीती देगची में एक इन्सां उबाल ले।

•

(२)

ढहती दीवारों से कभी बात कीजिए,
फुटपाथ पे बसर कभी रात कीजिए।

फ़लसफ़ा-ए-जिन्दगी लिखने से पहले,
किसी गरीब से जरा मुलाकात कीजिए।

शाही सडक तो कर चुके, स्वर्ग के मानिंद,
दुरुस्त जरा गलियों के हालात कीजिए।

परिवर्तन होगा किस तरह ये देखना है,
परिवर्तित इस मुल्क के खयालात कीजिए।

तसल्लियों से देश को राहत न मिलेगी,
राहत के लिए कुछ तो इन्तज़ामात कीजिए।

छोड़िये ये जाँच के बेकार से सवाल,
संसद में रोटी के सवालात कीजिए।

इन दियों से तम हरगिज़ न छँटेगा,
सूरज ईजाद कर, नव-प्रभात कीजिए।

•

(३)

उनकी लाठियाँ जब भी बरसी,
बे-छत घरों पर या नगे सरों पर।

व्यवस्था के जब भी हुए मशविरे,
निर्दोष चेहरे उछले ठोकरो पर।

वज़ीरो ने जब भी जलसे किए,
फाका हुआ गरीबों के घरो पर।

आवाम फुटपाथ पे सोती रही,
वहाँ शतरज खेली गयी चादरों पर।

पूजा किये बरसों पत्थरों को,
अब ईमान आया है काफिरों पर।

कितना सिर फिरा था वो वक़्त साहिब,
जब पाबंदियां हुई थी शायरों पर।

•••

किशोर भारती

जन्म—बूंदी, १९४४
सम्प्रति—निजी उद्योग, कोटा।

सौम्य व्यक्तित्व के धनी किशोर भारती मुख्य रूप से गीत लिखते हैं। गीतों के माध्यम से समाज की तमाम बुराइयों की ओर इंगित करने का भारती का अपना ख़ास अंदाज़ है। कविता में शब्दजाल और उलझे हुए प्रयोगों में भारती का विश्वास नहीं है। वे सीधी सपाट भाषा में मन को छूने वाली बात कहना चाहते हैं।

'पीर नगर' कविता सकलन प्रकाशित।

दो गज़लें

(१)

ज़ख्मों पर नमक की चदरिया है,
और झुलसी हुई दो-पहरिया है।

यूं न चिन्गारियों के तोहफे दो,
दिल तो बस प्यार की टपरिया है।

अब तो मंज़िल का बस खुदा-हाफ़िज़,
हमसे रूठी हुई *डगरिया* है।

अब उसे खोलने से क्या हासिल,
कि जो ग़म की बंधी गठरिया है।

अब न सौदा रहा न सौदागर,
यह तो उठती हुई बजरिया है।

•

(२)

भरते भ...
पड़ गई...

पर यह न था मालूम महलो के धनी,
तुझको कुटिया की खलेगी जिन्दगी।

टाट में लिपटी हुई फुटपाथ पर,
और यूं कब तक पलेगी ज़िन्दगी।

शायद अभी कुछ और भी जीनी पड़े,
यहाँ आदमी को बन्दगी में जिन्दगी।

दीमक लगी विश्वास की बैसाखियाँ,
लेकर भला कब तक चलेगी ज़िन्दगी।

कब तलक इस देश का नेतृत्व यूं,
जीता रहेगा सूरदासी ज़िन्दगी।

बरसात है तूफान है मझधार है,
पतवार बिन नैया में बैठी जिन्दगी।

इस बात का किसको पता था "भारती",
मधुमास आते ही जलेगी ज़िन्दगी।

• • •

'प्रेमी' परदेसी

सम्प्रति—मैनेजर, कोटा सेन्ट्रल कॉआपरेटिव सोसायटी, कोटा।

उर्दू मे "शब्बीर" थारानवी, हिन्दी में 'प्रेमी' परदेसी के उपनामों से समान अधिकार से रचना करते हैं। रहन-सहन और व्यवहार मे अलमस्त प्रकृति के "शब्बीर" शायरी के प्रति दो-टूक नजरिया रखते है।

"जनाब ! शायरी तो रूहानी चीज है। जब अपने भीतर से अर्ज होती है तो किसी के रोके रुकने वाली नहीं। उन्हीं लम्हात में जो 'खयाल' सर चढा वही लिख दिया।"

—'प्रेमी' परदेसी

मुझे वोट देना ही होगा

मुझे वोट देना ही होगा क्या कह कर इंकार करोगे,
सब्ज बाग दिखलाऊँगा मैं हँस–हँस कर इकरार करोगे।

सबको बँगले दिलवा दूंगा सबके घर मे कारें होगी
खिजा रसीदा गुलशन मे भी चारो तरफ बहारें होगी
हर घर पावर–हाउस होगा बिना जलाये बल्ब जलेंगे
हर घर के दरवाजे से ही लगी नदी की धारें होगी
अब तो कह दो घर-घर जाकर तुम मेरा प्रचार करोगे।
मुझे वोट देना ही होगा ....

सबके बच्चे अफसर होंगे बूढे पाते होगे भत्ता
बिना कमाये सब खायेंगे ऐसी होगी मेरी सत्ता
वड–पीपल के पत्तो से मैं साडी-ब्लाउज सिलवा दूगा
नही जरूरत मँहगाई मे कोई खरीदे कपडा लत्ता
अब तो मेरे ऊपर किरपा ऐ मेरे सरकार करोगे।
मुझे वोट देना ही होगा........

घर-घर टेलीफोन लगेगा टेलीवीजन लगवा दूंगा
पेरिस का मैं डांस "कैंबरे" कोटा मे ही दिखला दूंगा
शादी-ब्याह की इन रस्मों से पैसा-कौड़ी कोई न खरचे
दस-दस रुपये वोटर के पीछे दस भन्नाटे लगवा दूंगा
फिर तो कहो जरा मुझसे भी तुम थोड़ा सा प्यार करोगे।
मुझे वोट देना ही होगा .. ....

सब्ज-बाग दिखलाऊंगा मैं हँस-हँस कर इकरार करोगे

•••

ओम सोनी 'मधुर'

ओम सोनी 'मधुर' नगर के युवा रचनाकारों के बीच अपनी स्पष्ट पहचान बनाने में संलग्न हैं। हिन्दी और हाड़ौती के माध्यम से आपने सशक्त और लोकप्रिय रचनायें दी हैं। कविता का तेवर समय सापेक्ष है।

एक कविता

दोस्त !
कहो, किस तरह फलेगा यह पेड ?
जब कि,
इसकी हर शाख
अपने लिये जीती हो !
जब कि,
इसका तना
अपने लिए बढ़ रहा हो !
और जब कि,
अफसोस !
यह बात,
हर पात-पात जानता है !
फिर भी, वह कुछ नही कर सकता !!
क्योकि,
वह इन्ही सब के सहारे ही तो
जीता है !
दोस्त ! कहो किस तरह फलेगा यह पेड़ ?

●●●

राम करण 'स्नेही'

जन्म—२ जनवरी, १९३५
शिक्षा—हाई स्कूल
सम्प्रति—जूनियर एकाउन्टेण्ट, जिलाधीश कार्यालय, कोटा।

जी–तोड़ मेहनत के बाद जब पूरा दिन रेत की तरह मुट्ठी मे से फिसलता लगता है और जीवन किसी दुश्चक्र से बाहर की कोई चीज़ नही लगता, तब एक पत्थर फेंकने की इच्छा होती है। फलत: लेखन के माध्यम से षड़यन्त्रों पर तने हुए परदे उघाड़ने का प्रयास करता हूँ।

परिधि

आकडों में जिन्दगी
आस–पास की गन्दगी
तौल ली,
बांध ली,
और
समेट ली !
वर्तमान के संदर्भों में
जांच ली
और
परख ली !!
अन्तिम निष्कर्षों में
इत्मीनान से
स्याही में—घोल ली !!!
आस–पास की गन्दगी
आंकड़ों में जिन्दगी

•

कान्ह जी 'कान्ह'

शिक्षा—बी. एस-सी.
सम्प्रति—राजकीय महाविद्यालय, कोटा में अध्ययनरत ।

'नील कठ की उत्कंठा' पाले कान्ह जी 'कान्ह' नई जमीन की तलाश करने मे संलग्न है । कुंठित व अवरुद्ध भावनाओ के पर्दे उठाकर मुखमण्डल की तिर्यक रेखाओं को कविता के माध्यम से सार्थक अभिव्यक्ति दे रहे है । भविष्य के लिए तैयारियाँ करते हुए जो कुछ खट्टा-मीठा महसूस होता है, उसे कागज पर उतार रहे हैं ।

उत्कंठा

मै
यदि आज जहर पी लूँ
तो
अखवारो मे छपेगा—
"एक नवयुवक ने/मजबूरियों-वश—आत्महत्या करली"
लेकिन
मेरी इच्छा के/कोरे पृष्ठों के बीच
लिखी पक्ति
'नीलकंठ बनने की उत्कठा'
यूँही
रह जायेगी—उपेक्षित !

•

निशान

तुम !
कुण्ठित व अवरुद्ध भावनाओ के पर्दे उठाओ
मानस-पटल की परछाइयों से/अपना पल्लू छुड़ाओ

और
मुख–मण्डल की तिर्यक–रेखाओं को
चुनौती दे दो
तो निश्चय ही
तुम !
निराशावादी चक्रव्यूह को तोड़ सकोगे
जीवन के अनजान चौराहों पर खड़ी
स्वरहीन रश्मियों को
एक चहचहाती सुबह में बदलने का
कर सकोगे उद्घोष
वे तुम्हारा अभिनंदन करेंगी
और
समय की धूल पर
छोड़ जायेंगी
तुम्हारी अंगुलियों के निशान

•••

दीपक 'नयन'

शिक्षा—बी. काम. अंतिम वर्ष
सम्प्रति—छात्र।

कैशोर्य की सीमा को अभी-अभी लाँघकर आये दीपक 'नयन' मे अच्छी सम्भावनाएं है। अभी लेखन के क्षेत्र में एकदम नये हैं, किन्तु कविता के माध्यम से किन दायित्वों का निर्वाह होना है, इसकी समझ रखते हैं।

मजदूर

चारों ओर से उठ रही
खटाखट की आवाज !
आकाश को छूने की कोशिश मे
उठता तेज काला धुआं—
मशीनो के शोर मे दबी
जनमानस की आवाज !!

यह निश्चित ही कोई कारखाना है—
यहां मशीने चलती हैं
उत्पादन होता है
मशीन में डाला गया तेल,
महज़ एक सहारा है
असल में, उसे तो
इन्सान का शोषण प्यारा है !!!

उस मजदूर के पसीने की
टपकती........
बूंदों से........
बनती है डिज़ाइन !
उत्पादन पर यह खूबसूरत
सुर्ख रंग !!

जो हकीकत मे रंग नहीं, उस मजदूर के
अरमानों के खून के चन्द क़तरे हैं !
जो छिटक गये हैं, यहाँ—और—वहाँ
और
जिन्हें ढूंढने वह रोज यहाँ आता है
मगर,
खाली हाथ लौट जाता है।

●●●

प्रेमलता जैन

सम्प्रति—अध्यापिका।

प्रेमलता जैन मुख्य रूप से गीत और गज़लें लिखती हैं। कोटा में मंच के माध्यम से लताजी की अपनी अलग छवि है। नारी सुलभ सुकोमल भावों की पकड़ और अभिव्यक्ति का उनका अपना अलग तरीका है।

पी डालो इस गंगा जल को

अश्रु कलश ठहरो, मत छलको,
व्यर्थ भिगोते क्यों आँचल को।
कुछ पल तो सूखा रहने दो,
नैनों में सारे काजल को।

मात किया है नित्य बरस कर,
पावस के उमड़े बादल को।
मौन पड़ी जब, मन की वीणा,
कैसे गति देगी, पायल को।

क्रूर जगत का, नियम सदा से,
घायल और करे, घायल को।
क्षणिक विवशता से, विह्वल हो,
मत तोड़ो मन के सम्बल को।

और प्रतीक्षा कर, थोड़े दिन,
समझाओ कुछ, मन पागल को।
व्यर्थ बहाने से अच्छा है,
पी डालो इस गंगा जल को।

•

हकीम अब्दुल रज्ज़ाक 'माइल' सईदी टौंकी

जन्म—१८६०

पेशे से हकीम 'माइल' सईदी का तअाल्लुक राजस्थान की उस सरजमी से रहा है जिसे टौंक के नाम से जाना जाता है। जो उर्दू-अदब का एक मरकज है।

आप एक मुकम्मिल गजल–गो शायर है। तक़रीबन नव्वे वर्ष की उम्र होते हुए भी आप नौजवानों को अपनी रंगीन शायरी से मुत्तासिर करते हैं। नौ आमुज़ शोअरा के लिए आप शअले–राह की हैसियत रखते हैं। आपकी शायरी हसीन तस्वीहात–ओ–इस्तेहारात से पूरे होते हुए भी बहुत सादा होती है। रंगीनी, लताफत और शुगुफ्तगी आपके कलाम की विशेषतायें हैं। जबान के शेर कहने में आपको महारत हासिल है।

"मैं आज उम्र के उस दौर से गुज़र रहा हूँ जहाँ तक लोग कम पहुँच पाते हैं। शायरी का मुझे तवील तजुर्बा है। इस आधार पर मैं कह सकता हूँ कि अच्छी शायरी के लिये एक तवील एवं गहरे अध्ययन की जरूरत है। नो–उम्र शाइरों के लिये मेरी नेक–ख़्वाइशात हैं वे साफ गोई और मेहनत से शेर कहें।"

—माइल

दो गजलें

(१)

ये आलम बेदिली का छा रहा है,
तमन्नाओं से दिल घबरा रहा है

कयामत हो गया तर्के–मुहब्बत[1],
सितम का भी अब अरमां आ रहा है

१. प्रेम त्याग

ताज महल निर्मित रहने दो

मेरे सूने अन्तःस्तल पर, प्रश्न चिह्न अंकित रहने दो,
मैं जानूँ या तुम जानो पर, दीवारें शंकित रहने दो।

दो अनजानो के परिचय मे, दुनियाँ गर व्यवधान बने तो,
मधुर क्षणो की आशाओ पर, सपने आमंत्रित रहने दो।
मैं जानूँ या तुम जानो पर........ ...

दीप शिखा की भोगी पीडा, समझायें पागल शलभो को,
मर मिटने की परम्परा पर, आहुतियाँ संचित रहने दो।
मैं जानूँ या तुम जानो पर...........

गीतो की सरगम वीणा ने, खिली चाँदनी मे छेड़ी जो,
चढ़ी टीप की मन तुरवों पर, तारो को झंकृत रहने दो।
मैं ज नूँ या तुम जानो पर...........

नाम किसी का नित्य अधर पर, हुआ प्रतीक्षा मे अवलम्बन,
मूर्ति सलोनी सजल पलक पर, नैनो मे चित्रित रहने दो।
मैं जानूँ या तुम जानो पर....... ....

चाँद सितारो की गोदी में, शपथ लिये जो टूट न जाये,
स्वर्णिम जीवन की सुधियों पर, ताजमहल निर्मित रहने दो।
मैं जानूँ या तुम जानो पर....... ....

•••

हकीम अब्दुल रज्ज़ाक 'माइल' सईदी टौंकी

जन्म—१८६०

पेशे से हकीम 'माइल' सईदी का तअल्लुक राजस्थान की उस सरजमी से रहा है जिसे टौंक के नाम से जाना जाता है। जो उर्दू-अदब का एक मरकज़ है।

आप एक मुकम्मिल गज़ल-गो शायर है। तक़रीबन नव्वे वर्ष की उम्र होते हुए भी आप नौजवानों को अपनी रंगीन शायरी से मुत्तासिर करते हैं। नौ आमुज शोअरा के लिए आप शअले-राह की हैसियत रखते हैं। आपकी शायरी हसीन तस्वीहात-ओ-इस्तेहारात से पूरे होते हुए भी बहुत सादा होती है। रंगीनी, लताफत और शुगुफ्तगी आपके कलाम की विशेषतायें हैं। जबान के शेर कहने में आपको महारत हासिल है।

"मैं आज उम्र के उस दौर से गुजर रहा हूँ जहाँ तक लोग कम पहुँच पाते हैं। शायरी का मुझे तवील तजुर्बा है। इस आधार पर मैं कह सकता हूँ कि अच्छी शायरी के लिये एक तवील एवं गहरे अध्ययन की जरूरत है। नौ-उम्र शाइरों के लिये मेरी नेक-ख्वाइशात हैं वे साफ गोई और मेहनत से शेर कहें।"

—माइल

दो गजलें

(१)

ये आलम बेदिली का छा रहा है,
तमन्नाओ से दिल घबरा रहा है

कयामत हो गया तर्क-मुहब्बत[1],
सितम का भी अब अरमां आ रहा है

---

१. प्रेम त्याग

न जाने कद्र कब होगी वफ़ा की,
अभी तो आज़माया जा रहा है

तेरा दर्दे-मुहब्बत भी तो ज़ालिम !
मसर्रत[1] बन के दिल पर छा रहा है

कफ़स[2] हो जायेंगे सब आशियाने,
चमन का वह ज़माना आ रहा है

ये रब्ते बुलबुलो-सैयाद[3] कैसा ?
कोई तो गुल खिलाया जा रहा है

ग़लत अन्दाज़ नज़रों से भी 'माइल',
दिले-बेताब तसकीं[4] पा रहा है

•

महफ़िल से मैं उठ जाउंगा

(२)

जुस्तजूए-शौक में यूं ले चला है दिल मुझे,
जैसे कोई खींचता है जानिबे-मंज़िल मुझे

मेहरबानी से तेरी हासिल न होता वो कभी,
जो तेरी ना-मेहरबानी से हुआ हासिल मुझे

हां ! मुझे नाकामे-शौक़े दीद[5] रक्खा है मगर,
कर दिया है उसने ज़ौक़े-दीद[6] के क़ाबिल मुझे

अपनी तौफ़ीके-नियाज़े-बन्दगी से कर अता,
एक सजदा आस्ताने-नाज़ के काबिल मुझे

कोई क्या समझेगा यह राज़े-नियाज़े-हुस्नो-इश्क,
मैं समझता हूं, समझते हैं वो जिस क़ाबिल मुझे

---

१. हर्ष २. पिंजड़ा ३. बहेलिये एवं बुलबुल की दोस्ती ४. आराम
५. दर्शनों की अतृप्त इच्छा ६. दर्शन का सुख

देने वाले दीनो-दुनियां तेरे देने पर निसार,
दिल दिया और दिल भी दर्दे-इश्क के काबिल मुझे

देखते ही देखते महफिल से मैं उठ जाउंगा,
देखती की देखती रह जायेगी महफिल मुझे

वो अगर हो मेहरबां 'माइल' तो दुश्वारी मेरी,
इस कदर आसां है उनको जिस क़दर मुश्किल मुझे

●●●

बशीर अहमद 'तौफ़ीक़'

शिक्षा—इन्टर साइंस
सम्प्रति—सहायक स्टेशन मास्टर, रेलवे जंक्शन, कोटा।

उर्दू अदब में पुराने कोहना मश्क शायरों में शुमार किये जाने वाला एक नाम ब० अ० "तौफीक"। आप नगर की अदबी फिज़ाँ में उस्ताद की हैसियत रखते हैं। यही वजह है कि कई नौ-आमुज़ शोअरा आपसे फैजे-सुखन उठाकर कामयाब शायरी कर रहे हैं।

आपके कलाम में कौम की फला-ओ-बेहबूदी के ख्यालात हैं और आप मुल्क की तरक्की की तरफ गामज़न देखना चाहते हैं।

जनाबे "तौफीक" गजल-नज्म एवं आजाद नज्म बेहद कलात्मक ढंग से कह कर सब का दिल जीत लेते हैं।

गज़ल

क्या सई ए-राएगाँ[1] से निकलेगा
जो है दिल में ज़बाँ से निकलेगा

मैं वो किस्सा बयान कर तो दूँ
क्या नतीजा बयाँ से निकलेगा

लोग सब उसको याद कर तो लें
जो भी मेरी ज़बाँ से निकलेगा

कुछ हवा तेज भी है, ठण्डी भी
कौन अपने मकाँ से निकलेगा

चांदनी खुद जमीं पे आयेगी
चांद गो आस्माँ से निकलेगा

---

१. निष्फल प्रयास

जख्म मेरे जिगर .मे आयेगा
तीर उनकी कमाँ से निकलेगा

मैंने आवाज दे तो दी "तौफीक़"
जाने वो किस मकाँ से निकलेगा

•

तीन नज़्में

(१)

कह दिया हमने अकीदत[1] में खुदा पत्थर से
श्रौर फिर मांग भी ली खुल के दुआ पत्थर से

एक सदी ऐसी भी आई कि भरी दुनिया में
हमने पूछा है खुदा ! तेरा पता पत्थर से

देखने वालों को क्या-क्या न दिखा पत्थर में
मांगने वालों को क्या-क्या न मिला पत्थर से

आज मैं ग़ैर समझ लूं तो समझ लूं लेकिन
फिर भी रिश्ता तो पुराना है मेरा पत्थर से

एक मजनूं ही नही जोशे-जुनूं में, श्रक्सर
कितने दीवानों ने सर फोड़ लिया पत्थर से

संग दिल थे वो मगर रो दिये मेरे ग़म पर
जैसे एक चश्मा नया फूट पड़ा पत्थर से

मैं तो पत्थर हूँ मुझे पास पड़ा रहने दो
तुम तो आज़र[2] हो बना लोगे खुदा पत्थर से

यह भी एजाज[3] था तौहीद[4] का 'तौफीक' कभी
सुनने वालों ने यहा कलमा सुना पत्थर से

•

---

१. श्रद्धा २. एक प्रसिद्ध मूर्तिकार ३. चमत्कार ४. एकेश्वरवाद

रिश्ता-ए-आदमियत

(२)

आदमी की लाख ज़ातें
आदमियत का कोई रिश्ता नही है
मैं अज़ल से पूछता आया हूँ यारों !
आज भी कोई बता दो
सरहदों से, ज़ात से, मुल्कों से, क्यों इन्सा बंटा है ?
इल्मों-फन मे, बोलियों, नस्लों से क्यों इन्सां छंटा है ?
हाय वो आदम का बेटा !
कल जो दुनियां मे बसा है
चाँद पर पहुँचा, समन्दर को मथा है
महाभारत, रामलीला, रासलीलाएँ रचायी
और कुछ अनहोनी बातें कर दिखायी
यह पयम्बर बनके कुछ पैगाम लाया
रूह फूंकी और मुर्दों को जिलाया
रास्ता नेकी का दुनिया को बताया
पर अज़ल ही से तो इसने जग की बुनियाद डाली
मार कर हाबेल ने काबेल[1] को कल
धाक यो अपनी जमा ली
जैसे उसके खून का चर्चा नही है
आदमी की लाख जातें
आदमियत का कोई रिश्ता नही है।

•

बेचैन रूह

(३)

हाय राम ! लो, यही तो था वो,
जिसने मुझको गोली मारी !

---

१. दो फरिश्ते

जिसने मुझको कत्ल किया था !!
बूढे और कमजोर बदन से
मेरे कितना खून बहा था
मैं एक पल मे प्राण त्यागकर
जग-जीवन से चला गया था
सबने उसको बुरा कहा था
पकड़ लिया था
और सज़ा दे दी थी उसको फिर फांसी की
लेकिन वो तो मरा नहीं था
"आज भी वो ज़िन्दा फिरता है"

और फिर अब तो,
उसने अपनी पूरी फौज बना ली
लड़ते-लड़ते उसने अपनी धाक जमा ली
फिर वह अपनी फौज को लेकर
मेरी समाधि तक आया है।
झूठी प्रतिज्ञायें लेने
मिलकर झूठी-कसमे खाने
मेरे उसूलों पर चलने की
जिससे मेरी रूह कभी भी चैन न पाये
मुझको अबद[1] तक चैन न आये।

●●●

---

१. आखिर

ले के छुट्टी मुशायरे में गये
और तनख्वाह भी कटाई है
घर पे बीवी से हो गया झगड़ा,
जज्बाए-शाइरी तेरी दुहाई है

तीन गज़लें

(१)

कितना पाया विकार[1] चमचो से
चलता है कारोबार चमचो से

बाद में कुछ वो मुंह से बोलें हैं,
पहले पहने है हार चमचो से

खुद नहीं आते और मंगाते है,
मेरा साबुन उधार चमचों से

चमचागीरी खुदा की लानत है,
कहता हूँ बार-बार चमचों से

ऐ 'इलेक्शन' मे बैठने वालो!
क्या मिला दस हजार चमचों से

फिर भी मेरा तबादला न हुआ,
उसने दिलवाये तार चमचो से

जितने चमचे थे मेज़ के ऊपर,
हमने करवाये पार चमचों से

इस जमाने मे अपने तो 'डमडम'
काम निकले हज़ार चमचों से

•

---

१. मान-सम्मान

(२)

उल्फ़त मे गमो-रंज के अंबार हमे दो
जो उठ न सके गैर से वो बार[1] हमे दो

है ख्वाहिशे-दिल ये कि कभी मर्गे-उदू[2] पर,
वो दिन भी कभी आये कि तुम तार हमें दो

कारों के हो मालिक तो करो कारें-नुमायां,
हम फिरते हैं बेकार कोई कार हमे दो

की डाक्टरी पास हसीनो ने तो बोले,
"अब शहर मे जो दिल के हैं बीमार हमे दो"

हमने तो ये इंसाफ तेरी बज्म में देखा,
दुश्मन को तो पहनाये हैं सौ हार, हमें दो

आखों से भी डन्डे न दिखाओ हमें क्या खूब,
होती रहें जो मुर्गियां बीमार हमें दो

दीवान[3] छपा मेरा तो चिल्लाये खरीदार,
"डमडम" के फड़कते हुए अशआर हमे दो

•

(३)

फ़ितनाओ-ओर[4] पे माईल है बशर[5] दो बटे तीन,
कि बशर होने में मौजूद है शर दो बटे तीन

इस तरह चेहरा लबो तक है तेरा जेरे-नकाब[6]
जिस तरह से कि गहन मे हो कमर दो बटे तीन

गैर तन्हा है, मेरे साथ है लड़का भी मेरा,
मुझ पे लाज़िम है मोहब्बत की नज़र दो बटे तीन

गुजरी तिफ़्ली-ओ-जवानी है जईफ़ी[7] बाकी,
गोया हम कर चुके तय अपना सफ़र दो बटे तीन

---

१. बोझ २. दुश्मन ३. कविता संग्रह ४. बुरी आदतों में लिप्त
५. व्यक्ति ६. नकाब में ७. बुढ़ापा

संगे-दर आपका खुदरा है मुझे डर ये है,
घिसते घिसते कहीं रह जाये न सर दो बटे तीन

छोड़ दे अब न कमां बन के कहीं तीरे-हयात,
झुक गयी है जो बुढ़ापे में कमर दो बटे तीन

शोरे-महशर[1] है कि बारिश में सदा मेंढक की,
हर गटर में जहां देखिये टर दो बटे तीन

•••

---

१. कयामत का शोर

मोहम्मद अमीन 'निशाती'

जन्म—८ अगस्त, १९३८
शिक्षा—हायर सैकण्डरी, अदीब कामिल

कोटा शहर का अदबी लिहाज से जिक्र करते समय एक अहम् नाम सामने आता है, जनाब अमीन 'निशाती' का। कोई भी नशिस्त हो, उनका वहाँ होना एक खुशनुमा माहौल को जारी करता है। गज़ल का एक एक शेर जिन्दगी की दुःखती रग को बार-बार दबाता, शेर पर शेर भारी पड़ता जाता है और इन सबमे सुहागे का काम करती है, उनकी आवाज। आवाज का जादू एक बार सुनने के बाद भी बार-बार सुनने की ललक जगाये रखता है। देखने सुनने मे एकदम सीधे-साधे, दुबले-पतले, छोटे से कद के जनाबे अमीन 'निशाती' से जो भी मिलता है, बिना मुतास्सिर हुए नही रह सकता।

शायरी को ज्यादातर गजलो का जामा ही पहनाया है। वैसे आप बतौर रूमानी शायर ही पहचाने जाते हैं, पर जदीद रग के शेर भी काफी कहते हैं।

आप मरहूम साहबजादा यासीन अली खां 'निशात' टौंकी के शागिर्द है। 'निशात' साहब ने राजस्थान में बहुत से आलातरीन शागिर्द पैदा किये, जिनमे आपका नाम सफ़े-अव्वल मे शुमार किया जाता है। आप आल इडिया मुशायरों मे शिर्कत फरमा चुके हैं।

क़तआत

दौर किस दर्जा भयानक था 'इमरजेंसी' का
आज उससे भी खतरनाक ये महगाई है
तानाशाही तो हुई खत्म गरीबी न मिटी
यह गरीबों को मिटाने के लिये आई है

•

रोक दो, रोक दो, बढती हुई महगाई को
वरना कुछ ऐसा जहा में परिवर्त्तन होगा

भूख टकरायेगी मंहगाई से, जनता तुमसे
हार जाओगे अगर अबके 'इलेक्शन' होगा

•

मां से दो–चार क़दम आगे ये बेटी निकली
उसने बख्शा था जिसे उसको सज़ा दी इसने
मिल के दोनों ने ग़रीबो पे बड़े ज़ुल्म किये
उसने नसबंदी की मंहगाई बढ़ा दी इसने

•

जिस तरफ देखिये है भूख का आलम बरपा
और मंहगाई भी हर तरहा कमर तोड़ गई
मां के सौ साल तो पूरे हुए जैसे–तैसे,
खून बेटी पिये जी भर के, उसे छोड़ गई

•

चार गज़लें

(१)

गम के पहलू मे रातें कटेंगी तब उजाला नमूदार होगा,
हसरतो की दुकानें लगेंगी आरज़ूओ का बाज़ार होगा

रगरलियां मनाते रहोगे या कुछ अहसास बेदार होगा,
अपने पापों की गठरी संभालो सास लेना भी दुश्वार होगा

कल की किसको ख़बर कौन जाने ऐसी करवट भी ले ले ज़माना,
जो तरसता हो इक बूंद को भी मयकदों का वो मुख्तार होगा

अपने हाथो से जिसको तराशा कल वही बुत खुदाई करेगा,
जिसको पूजेगा सारा जमाना अपने हाथों का शाहकार होगा

हम पे इल्ज़ामे-बादाकशी है ज़ाहिदों की भी हालत बुरी है,
पारसा जिसको समझे हुए हो सबसे आला गुनाहगार होगा।

जाके सैयाद से कोई कह दे सिर्फ़ हमको ही ख़तरा नहीं है,
जब जलेगा नशेमन हमारा सारा गुलशन धुंआधार होगा

दो खबर जाके अहले-हवस को फिर कहीं अस्मतें बिक रही है,
होगी नीलाम कोई जुलेखा कोई यूसुफ़ खरीदार होगा

ऐ 'अमीन' आज अरमां निकालो जितना जी चाहे हंस लो हंसा लो,
सर पे सूरज कड़ी धूप होगी कल का दिन बर्क रफ़्तार होगा

•

(२)

बहती नदी है और बला का चढ़ाव है,
गिरदाब में नसीब है तूफ़ा मे नाव है

हर एक सफ़र में तुझसे ग़मे-जिन्दगी मिले,
क्या जाने तुझसे कितने जनम का लगाव है

एक अजनबी से मिलके परेशान हो गया,
ऐसा लगा कि पिछले जनम का लगाव है

एक तुम कि हमको भूल गये मुद्दतें हुई,
एक हम कि हमको आज भी तुमसे लगाव है

कुछ जहन हादसाते-जहाँ से है मुन्तशर,
कुछ दिल पे रोजगारे-सितम का दबाव है

अहले-चमन ने उनको फ़रामोश कर दिया,
इस फस्ले-गुल मे जिनके लहू का रचाव है

जाना जहाँ है फिक्र वही की करो 'अमीन'
दुनियां में सिर्फ़ चार दिनो का पडाव है

•

(३)

राहे-वफ़ा पे तेरे दीवाने चले तो हैं,
जम्हूरियत का जश्न मनाने चले तो हैं

सर से कफ़न लपेट के घर से निकल पड़े,
अपने लहू का रंग दिखाने चले तो हैं

फाके हैं घर में पेट से पत्थर को बांधकर,
भूखों की भूख-प्यास मिटाने चले तो है

हालांकि अपने घर मे चरागाँ न कर सके,
जुल्मत-कदे मे शमआ जलाने चले तो हैं

जुलमत मिटे, मिटे न मिटे, इसका ग़म नही,
जुलमत का हम वजूद मिटाने चले तो हैं

जो मर मिटे वतन पे अमर हो गये वो लोग,
दुनिया मे खूब उनके फ़साने चले तो हैं

रास आये या न आये हमें ज़िन्दगी 'अमीन'
अपने वतन की लाज बचाने चले तो हैं

•

(४)

टूट गईं सारी आशायें,
लौटा दो मन की पीड़ायें

जनम-जनम की परम्परायें,
प्यासा जीवन मृग-तृष्णायें

कदम-कदम पर है बाधायें,
कैसे जीवन मार्ग बनायें

व्याकुल जीवन व्याकुल नैना,
व्याकुल मन की व्याकुलतायें

मन मे ज्वाला भड़क उठी है,
झुलस रही हैं अभिलाषायें

कलयुग में सब मौन हो गईं,
गूंगी-बहरी है प्रतिमायें

सूना-सूना सावन गुज़रा,
सूखी-सूखी सी बरखायें

तुम क्या बदले किस्मत बदली,
हाथो की बदली रेखायें

आशा है तुम दोगे सहारा,
फिर क्यो न हम ठोकर खायें

अधकार तो मिट जायेगा,
कर्त्तव्यो की जोत जलायें

द्वार नयन के मूंद लिये हैं,
आप खयालो में आ जायें

खुद को'अमीन'हम भूल चुके हैं,
भूलने वाले याद न आयें

•••

जहीरुल हक़ गौरी

जन्म—१६३६, कोटा
शिक्षा—एम. ए. (अंग्रेजी) एम. ए. (उर्दू)
सम्प्रति—अध्यापन कार्य में रत।

उर्दू-अदब मे 'जफर' गौरी के नाम से पहचाने जाने वाले नौजवान शायर जहीरुल हक साहब काफी संजीदा एवं बुर्दबार शख्सियत के मालिक हैं। शायरी का शौक फितरी है। आप के कलाम में पुख्तगी है। बकौल 'जफर' साहब के—

"मैंने बदलते हुए युग में आँख खोली है। नई विचारधारा का आदमी हूँ। जीवन, इसकी पीड़ा और कड़ुवाहट महसूस करता हूँ। किसी "इज्म" विशेष का पाबंद नहीं हूँ। दिल पर असर करने वाली बात से प्रभावित होता हूँ और इस ही से शेर (कविता) कहने की प्रेरणा मिलती है मुझे।"

—जफ़र

दो गज़लें

(१)

टूटे तख्ते पर समन्दर पार करने आये थे
हम भी इस तूफ़ान-ए-गम से प्यार करने आये थे

डर के जगल की फिजा से पीछे-पीछे हो लिये
लोग छिप कर काफ़िले पर वार करने आये थे

कैसी अपनी कमनसीबी देख कर शरमा गये
चोर, मुझ बेमाया को नादार करने आये थे

इस गुनाह पर मिल रही है संगसारी की सजा
पत्थरो को नीद से बेदार करने आये थे

लोग समझे अपनी सच्चाई की खातिर जान दी
वरना हम तो जुर्म का इकरार करने आये थे

हर तरफ था इक तमाशा शहरे-हस्त-ओ-बूद में
हम से भी अहबाब कल इसरार करने आये थे

वह भी कर्ब-ए-खुद बयानी मे 'ज़फ़र' गलता मिला
जिससे अपनी ज़ात का इजहार करने आये थे

•

(२)

धूप से कुचले पेड़ो के फिर जीने का सामान किया
दिल की खुश्क जमी पर उसने बारिश सा अहसान किया

आज भी इंसा की फ़ितरत में खालिक का सा तल्लवुन है
जगल मे इक शहर बसाया, बस्ती को शमशान किया

मिल कर उससे तअल्लुक की इक शहरी रस्म निभा आये
नकली हँसी की छाँव मे बैठे, बातों का जलपान किया

वे मौसम बरसात ने कैसी आग लगाई घर-घर मे
जिस्मों को मिट्टी कर डाला, रिश्तों को अनजान किया

नीची शाख का कच्चा फल थे, धूप की गोद में पलते थे
हाथ बढ़ा कर उसने तोड़ा, चक्खा, बेपहचान किया

बेकारी की तीखी सांसें आरी सा काटें दिन-रात
जीना कितना मुश्किल फन था हमने उसे आसान किया

•

एक नज़्म बाजयापतः

अभी मैं मुन्जमिद[1] हूँ
बर्फ की मानिन्द[2] चोटी पर

१. जमा हुआ २. समान

चट्टानें टूट कर जब रास्ता देंगी
तो, दरिया की तरह
लहरा के उतरूँगा
समन्दर मे छुपी उस गहरी नीली प्यास के दिल मे
हवा का अक्स बनकर
रेत के शीशे मे उभरूँगा

चमकती धूप के पंखो पे उड़ता
बादलो के आसमानी जगलों को पार कर लूंगा
गुलाबी मौसम की आँख से
शबनम सा बरसूँगा

हर एक पहचान की
खुश्बू भरी तितली सा उड़-उड़ कर
कभी कोहरे भरे लम्हों मे
ठिठरा-ठिठरा........बिखरा-बिखरा
फिर, मैं
अपने बेरंग खालो-खत पाने को
नन्हे-नन्हे हाथो के—
मुकद्दस[1] लम्स[2] की गर्मी को तरसूँगा
........रेत के शीशे में उभरूँगा........

•••

१. पवित्र २. स्पर्श

राज़ वारांनवी

सम्प्रति—उर्दू अध्यापक, वारां।

इस क्षेत्र के उर्दू अदब मे जिस शख्सियत को लोग सबसे ज्यादा सम्मान देते हैं, उन्ही मफ्तूँ कोटवी की शागिर्द परम्परा की प्रतिभाशाली उपलब्धि है 'राज़' वारांनवी। दरअस्ल इस पूरे क्षेत्र मे 'राज़' की टक्कर के कुछ ही शायर हैं। 'राज़' की शायरी मौजूदा दौर की तरजुमानी करती है।

पांच गज़लें

(१)

मज़हब को फिरको मे बाँटा धर्म के ठेकेदारो ने
मिल्लत को तकसीम किया है तफरीकी[1] बंटवारों ने

वक़्ते-मुसीबत रोते हमको साथी अपने छोड़ गये
जैसे उलझी नाव भँवर में छोड़ा साथ किनारो ने

साकी ने झुंझलाकर सारे पैमानों को तोड दिया
मैख़ाने मे धूम मचाई जब सरकश[2] मैख्वारो ने

ज़ाहिद[3] सा बहरूप बनाकर लूटा उसने दुनियाँ को
लोगो को धोखे मे रक्खा सजदो के अम्बारों ने

(२)

आतिशे–गम[1] में सुलगती दास्ता है ज़िन्दगी
नीम सोज़ां लकड़ियों का सा धुंआँ है ज़िन्दगी

टूटते है बारहा जिन पर मुसीबत के पहाड़
वास्ते उनके बला–ए–नागहाँ[2] है ज़िन्दगी

जो उगाता है बड़ी मेहनत से खेतों में अनाज
क्यों उसी के वास्ते ना–मेहरबां है ज़िन्दगी

इसकी पानी पर है जड़, इसका हवा पर है मदार[3]
रेत की दीवार वाला इक मकां है ज़िन्दगी

देखकर फुटपाथ पर अफ़लास के मारों की भीड़
ऐसा लगता है कि दर्दो–गम की मां है ज़िन्दगी

देखकर मुंह फेर लेते हैं वो जाने हमसे क्यों
आजकल लगता है हमसे बदगुमां है ज़िन्दगी

गुमशुदा मंज़िल की ख़ातिर तपते सहरा में ऐ 'राज'
राह से भटका हुआ सा कारवां है ज़िन्दगी

•

(३)

फूलों में पलने वाले कांटों पे चल रहे हैं
हासिल जिन्हें थी खुशियां वो गम में जल रहे हैं

चालें वही पुरानी उनकी बिसात की है
है फर्क सिर्फ इतना मोहरे बदल रहे हैं

तहज़ीबे–मशरिकी[४] को ठुकरा के हुस्न वाले
ख़ातिर नुमाइशों की सजकर निकल रहे है

---

१. दुःखो की अग्नि २. आकस्मिक मुसीवत ३. आश्रय
४. पूर्व की सभ्यता

राज़ वारांनवी

सम्प्रति—उर्दू अध्यापक, वारां।

इस क्षेत्र के उर्दू अदब मे जिस शख्सियत को लोग सबसे ज्यादा सम्मान देते है, उन्ही मफ्तूँ कोटवी की शागिर्द परम्परा की प्रतिभाशाली उपलब्धि है 'राज़' वारांनवी। दरअस्ल इस पूरे क्षेत्र मे 'राज़' की टक्कर के कुछ ही शायर हैं। 'राज़' की शायरी मौजूदा दौर की तरजुमानी करती है।

पांच गज़लें

(१)

मज़हब को फिरको मे बाँटा धर्म के ठेकेदारों ने
मिल्लत को तक़सीम किया है तफ़रीकी[1] बटवारो ने

वक़्ते-मुसीबत रोते हमको साथी अपने छोड़ गये
जैसे उलझी नाव भँवर मे छोडा साथ किनारों ने

साकी ने झुंझलाकर सारे पैमानों को तोड़ दिया
मैख़ाने मे धूम मचाई जब सरकश[2] मैख्वारों ने

ज़ाहिद[3] सा बहरूप बनाकर लूटा उसने दुनियाँ को
लोगो को धोखे मे रक्खा सजदों के अम्बारो ने

ज़ुल्मत की घनघोर घटाएं जब-जब दुनियाँ पर छाई
तब-तब इस धरती पर अक्सर जन्म लिया अवतारों ने

नींद से गफ़लत की हम जागे उस दम 'राज़' खुली आँखें
लूट लिया जब घर को अपने परदेसी तज्जारों[4] ने

•

१. फूट डालने वाले २. विद्रोही ३. उपदेशक ४. व्यापारी

(२)

आतिशे-गम[1] में सुलगती दास्तां है जिन्दगी
नीम सोजा लकड़ियों का सा धुँआं है जिन्दगी

टूटते हैं बारहा जिन पर मुसीबत के पहाड़
वास्ते उनके बला-ए-नागहाँ[2] है जिन्दगी

जो उगाता है बड़ी मेहनत से खेतों में अनाज
क्यों उसी के वास्ते ना-मेहरबां है जिन्दगी

इसकी पानी पर है जड़, इसका हवा पर है मदार[3]
रेत की दीवार वाला इक मका है जिन्दगी

देखकर फुटपाथ पर अफलास के मारों की भीड़
ऐसा लगता है कि दर्दो-गम की मां है जिन्दगी

देखकर मुँह फेर लेते हैं वो जाने हमसे क्यों
आजकल लगता है हमसे बदगुमा है जिन्दगी

गुमशुदा मंज़िल की ख़ातिर तपते सहरा में ऐ 'राज'
राह से भटका हुआ सा कारवां है जिन्दगी

•

(३)

फूलों में पलने वाले कांटो पे चल रहे है
हासिल जिन्हें थी खुशिया वो गम मे जल रहे हैं

चालें वही पुरानी उनकी बिसात की हैं
है फ़र्क सिर्फ इतना मोहरे बदल रहे हैं

तहज़ीबे-मशरिकी[4] को ठुकरा के हुस्न वाले
ख़ातिर नुमाइशों की सजकर निकल रहे हैं

---

१. दुःखों की अग्नि २. आकस्मिक मुसीबत ३. आश्रय
४. पूर्व की सभ्यता

दौलत-कदे बने हैं अफ़लास की बदौलत
मेहनतकशो के बल पे ज़रदार पल रहे हैं

कल था जिन्हे तकब्बुर[1] इमलाक के नशे में
वो आज अपने खाली हाथो को मल रहे है

ग़ैरों की बात छोड़ो वो तो पराये ठहरे
अपने ही 'राज़' लेकिन अपनों को छल रहे है

•

(४)

क्या-क्या नहीं होता है सुनसान अंधेरे मे
बिक जाते हैं लोगों के ईमान अंधेरे मे

क़त्ल अपनों का करता है इन्सान अंधेरे में
क़ातिल की नही होती पहचान अंधेरे में

दिल तोड़ने वाले ने बेदर्दी से तोड़ा दिल
अनजान सी इक शब के अनजान अंधेरे मे

हासिल न तुझे होगा मक़सद कभी जीने का
यूँ बैठ के रोने से नादान अंधेरे मे

जो दिन के उजाले मे ज़ाहिद बने फिरते हैं
होते है वही साबित शैतान अंधेरे मे

तौहीद[2] के उपदेशक ऐ! 'राज़' कई अक्सर
कहते है खुद अपने को भगवान अंधेरे मे

•

(५)

बिरहमन[3] सबसे सिवा अपना शिवाला समझे
शेख़ साहब भी खुदा अपना निराला समझे

---

१. दर्प, अहंकार २. अद्वैतवाद ३. ब्राह्मण

बारहा खाक हुआ जल के नशेमन मेरा
बिजलियां गिरती रही लोग उजाला समझे

तुम न समझोगे तुम्हारे लिये मैं पत्थर हूँ
मेरी अज़मत तो मेरा पूजने वाला समझे

काकुले-नम[1] को समझता हो जो रहमत की घटा
ज़ुल्फ़े-बरहम[2] हो तो फिर नाग वो काला समझे

बन गया 'राज़' वो औरों के लिए जाने-हयात
हम जिसे अपने लिए ज़हर का प्याला समझे

●●●

---

१. भीगी ज़ुल्फ़ें २. बिखरी ज़ुल्फ़ें

अब्दुल शकूर अंसारी 'अनवर'

जन्म—१९५२

सम्प्रति—कोटा में उर्दू के अध्यापक (राजकीय सेवा)।

आपको उर्दू से फ़ितरी लगाव है, इसीलिये उर्दू को अपनी तालीम में इख्तयारी मजमून की हैसियत से देखते हैं। तालीम का सिलसिला अभी भी जारी है। गुज़िश्ता दिनों "अदबी-सभा" (कोटा) के ज़ेरे-एहतमाम मे एक सिम्पोजियम और मुशायरे के दौरान एक कारकुन की हैसियत से आपको हिन्दुस्तान के मुम्ताज़ शोरा-ो-अदवा से मुलाकात का शर्फ़ हासिल हुआ। वही से आपके भीतर का 'शायर' जाग उठा।

"जदीद शेर कहता हूँ लेकिन रिवायती शाइरी से परहेज नहीं करता।"

—'अनवर'

कतआत

दौरे-हाज़िर में सुखनवर[1] ये बयाँ ठीक नही
साफ़ कहता हूँ सुनो ! इश्के-बुताँ ठीक नही
वक़्त के हाथ में पत्थर है, यह महसूस करो !
ऐसे माहौल मे शीशे का मकाँ ठीक नही

•

पुरखतर[2] मोड़ हैं सुनसान गुजर-गाहो में
और अकेला हूँ मेरे साथ में रहबर भी नही
मेरी तक़दीर मुझे ले के कहां आई है ?
रहनुमाई[3] को जहां मील का पत्थर भी नही

•

१. साहित्यकार २. खतरनाक ३. पथ-प्रदर्शन

पाँच गज़लें

(१)

बहते-बहते न ये पानी यहाँ ठहरा होता,
चलते-चलते ये समन्दर कोई गहरा होता

मेरे अपनों की मुहब्बत का फसाना सुनकर,
बस यही सोच रहा हूँ कि मै बहरा होता

मैंने दरवाज़ा-ए-दिल कब का खुला छोड़ा है,
कोई तो आके मुसाफ़िर यहाँ ठहरा होता

काश ! दुनियाँ मुझे ये दारो-रसन[1] ही देती,
मै भी तारीख[2] का इक बाब[3] सुनहरा होता

पेट की आग ने झुलसा दिया इसको वरना,
मेरी तशहीर[4] का बाइस[5] मेरा चेहरा होता

•

(२)

है आज कहाँ बज्म-ए-सुखन[6] देख रहा हूँ
जज्बात में उलझा हुआ फन देख रहा हूँ

तुम मुझसे मेरी ज़ात[7] का अन्जाम न पूछो,
मै अपने करी[8] दारो-रसन[9] देख रहा हूँ

इन्सान से इन्सान का दिल क्यों नही मिलता,
मिलता हुआ धरती से गगन देख रहा हूँ

बिजली ने नशेमन ही जलाया नही मेरा,
लिपटा हुआ शोलो से चमन देख रहा हूँ

---

१. सूली और फाँसी का फन्दा २. इतिहास ३. अध्याय ४. प्रचार ५. कारण ६. साहित्यिक महफिल ७. अस्तित्व ८. समीप ९. सूली और फाँसी का फन्दा

मंजिल पे पहुँच कर ही रहेंगे कभी 'अनवर',
हर एक मुसाफिर में लगन देख रहा हूँ

•

(३)

इस अजनबी दुनियां में शनासा[1] नहीं मिलता,
मैं ढूंढ रहा हूँ कोई अपना नही मिलता

दुनियां मे हर एक ऐब से जो दूर रहा हो,
ऐसा तो कोई शख्स फ़रिश्ता नहीं मिलता

सूरज की हुकूमत थी यहां जब मैं गया था,
लौटा हूँ तो इक धूप का टुकड़ा नही मिलता

चौराहो की भूल-भुलैयां में फंसा हूँ,
मंजिल पे जो पहुँचा दे वो जादा[2] नही मिलता

तफ्तीश[3] मेरे क़त्ल की फ़ाइल मे दबी है,
मक़तल[4] में कोई खून का धब्बा नही मिलता

यह एक तमन्ना है तमन्ना ही रहेगी,
तपते हुए सहरा में तो साया नहीं मिलता

'अनवर' की तरह फिक्र में इक दर्द निहां[5] हो,
ऐसा तो कोई ख़ाक का पुतला नही मिलता

•

(४)

एक शै खोएंगे तब दूसरी पाना होगा,
रौशनी के लिए अब घर को जलाना होगा

आज तन्हा हूँ तो क्या यह मुझे उम्मीद तो है,
कुछ ही दिन बाद मेरे साथ जमाना होगा

---

१. परिचित २. रास्ता ३. जांच, खोजबीन ४. वध-स्थल
५. छिपा हुआ

क़द्र बढ़ जाती है जितनी भी पुरानी हो शराब,
ज़ौक़ निखरेगा मेरा जितना पुराना होगा

क्या सबब है जो यहाँ साँप ही आते हैं नजर,
अगले वक़्तों का कोई दफ़्न ख़जाना होगा

फिर तो हो जाओगे सुकरात की मानिन्द अमर,
सिर्फ़ थोड़ा-सा ज़हर तुम को भी खाना होगा

कौन देता है यहाँ साथ किसी का 'अनवर',
अपने हिस्से के गमों को तो उठाना होगा

•

(५)

घर की बरबादी का अफ़साना कहा करता है,
वो जो आखों से मेरी खून बहा करता है

छोड़कर साथ मेरा इतने पशेमाँ[1] क्यों हो ?
यूँ तो अक्सर ही ज़माने में हुआ करता है

डर के बिजली से कहाँ जाओगे सोचा तुमने !
फिर नशेमन तो उजड़ता है, बना करता है

जब भी होता है कोई कारवाँ मंज़िल के करीब,
सुनते आए हैं कि अक्सर ही लुटा करता है

तुम अगर खिज़्र[2] नहीं हो तो बताओ क्या हो ?
कौन तपते हुए सहरा में मिला करता है

हम भला चाँद से क्यों रोशनी माँगें 'अनवर',
वो तो खुद रात का मोहताज हुआ करता है

•••

१. शरमिंदा २. भूले-भटकों को रास्ता बताने वाले एक अमर पैगम्बर

अब्दुल लतीफ़ 'सुरूर' वारांनवी

जन्म—१६३८

सम्प्रति—राजकीय विद्यालय, कोटा में उर्दू के अध्यापन कार्य में रत।

शक्लो-सूरत से शायर नजर आने वाले 'सुरूर' क़दीमो-जदीद दौर के उम्दा शायर हैं। हज़रत 'मफ्तूँ' कोटवी एव कैसर साहब की सोहबत से आपकी शायरी एक बेहतर मुकाम बनाती जा रही है।

जैसे-जैसे जमाने में परिवर्तन हुआ, वैसे-वैसे इन्होंने अपने कलाम का मजाक बदला है। आप दौरे-हाज़िर के अच्छे शोअरा में शुमार किये जाते हैं।

जनावे 'सुरूर' वक़्त के बदलते हुए मिजाज पे गहरी नज़र रखते हैं और कभी-कभी ऐसी दुखती रग पर हाथ रख देते हैं कि सुनने वाला तड़प कर रह जाता है। शायद यही आपकी कामयाबी का राज है।

दो नज़्में

मजदूर की पुकार

(१)

हमें बहका नही सकते, हमें फुसला नहीं सकते,
महलवालो ! हमें बातो से तुम बहला नही सकते।
हमारे पेट की अग्नि को गर बुझवा नहीं सकते,
तुम भी पेट भर कर देखना अब खा नही सकते।

हमारी यूनियन है मुत्तहिद अब सारे आलम में,
हमारी यूनियन से तुम कभी टकरा नही सकते।
यकीनन हो गये मजदूर अब बेदार दुनियाँ मे,
इन्हें अब लोरियाँ देकर तुम सुलवा नही सकते।

यक़ीनन वक्त के "फिरओन" हमको अब न लूटेंगे,
गरीबों, मुफलिसो को और अब तड़पा नही सकते।
बजेगा चार-सूँ दुनियाँ में अब मजदूर का डंका,
ये ज़ालिम हम पे अब ज़ुल्मो-सितम ढा नही सकते।

बदल देंगे जहाँ को हम यही मकसद हमारा है,
हमारे काम मे रोड़ा तुम अटका नही सकते।
फरेबी और रहज़न बनके तुमने हमको लूटा है,
अमीरो! तुमसे अब मजदूर धोखा खा नही सकते।

बनाया है महल तुमने हमारा खून पी-पी कर,
तुम अपने दम से कुटिया भी मगर बनवा नही सकते।
बढ़ा आता है मजदूरों का इक सैले-रवाँ हमदम,
इस आंधी और तूफां को तुम रुकवा नही सकते।

"सुरूर" अपने हक इनसे यकीनन छीन लेंगे हम,
हमारे हक को ये अपनों मे बटवा नही सकते।

•

(२)

निज़ामे-आलम बदल रहा है,
उसूले-फ़ितरत अटल रहा है।
ख़िज़ा की ज़द से निकल रहा है,
फिर आज इन्सां संभल रहा है।

उसी को ज़ालिम कुचल रहा है,
तू जिसके टुकडो पे पल रहा है।
गुलो को ना-हक कुचल रहा है,
कली को अहमक मसल रहा है।

वही यकीनन सफल रहा है,
जहाँ मे जो बाअमल रहा है।
रगों में जो कुछ लहू है बाकी,
वह आँख से अब निकल रहा है।

है कितना मजलूम इब्ने-आदम,
गमों की भट्टी में जल रहा है।
अमीर हुलिया बदल-बदल कर,
गरीब को फिर कुचल रहा है।

है जिन्दगानी बमिस्ले-पानी,
कि, बर्फ़ जैसे पिघल रहा है।
वो देखो ! मिट्टी का एक पुतला,
ग़ुरूर में अब उछल रहा है।

ख़िज़ां के आलम में हमसे देखो,
हमारा साया भी टल रहा है।
"सुरूर" बेदार हो भी जाओ,
जमाना करवट बदल रहा है।

•••

एम. आई. ए. खान 'माइल'

जन्म—१२ अगस्त, १९४४
शिक्षा—बी. ए. राजकीय महाविद्यालय, टोंक
सम्प्रति—डी. सी. एम. उद्योग समूह, कोटा में कार्यरत।

समकालीन उर्दू शायरी के चर्चित हस्ताक्षर 'माइल' खयाल का चुनाव बेहद बारीकी से करके उसे बुलंदी तक उठाकर उस्तादाना अंदाज मे बयान करने में माहिर हैं।

टोंक के मशहूर उस्ताद शायर मौलाना अब्दुल हई साहब से इस्लाह लेते रहे है।

"शायर को नौकरी के दबाव में, किसी की खुशामद अथवा लाग-लपेट में आकर नहीं लिखना चाहिये। 'बात' चाहे किसी को मीठी लगे या कड़वी, सुनने वाले को 'अपील' करनी चाहिए, पसन्द आनी चाहिए। जब हालात का दबाव बेहद बढ़ जाता है तभी तबीयत ख़ुदबख़ुद शायरी करने पर आमादा हो जाती है।"

—माइल

तीन गजलें

(१)

यह सोच लेना ही काफ़ी है, आदमी के लिये
कि मौत कितनी जरूरी है, जिन्दगी के लिये

फिराक,[१] सोज़,[२] अलम,[३] यास[४] ज़िन्दगी के लिये
मुझे गवारा है सब कुछ तेरी खुशी के लिये

यह क्या सितम है कि दिल एक और पहलू दो,
खुशी किसी के लिये और ग़म किसी के लिये

१. वियोग २. जलन ३. दुःख ४. ना-उम्मीद

ज़ख्मे जिगरो—दर्दे-दिलो—सोज़े—तमन्ना[1]
रूदादे-गमे-इश्क़ के उनवान[2] बहुत है

सदशुक्र वफाओं का सिला मिल गया "माइल"
वोह क़त्ल मुझे करके पशेमान[3] बहुत हैं

•

(३)

न जाने ज़माना किधर जा रहा है
कि, इन्सान जीने से घबरा रहा है

यह होता रहा है, यह होता रहेगा
कोई आ रहा है कोई जा रहा है

अभी से ही तर्के-सितम[4] का इरादा
सितमगर यह कैसा सितम ढा रहा है

कभी जिनकी ठोकर मे था ये जमाना
ज़माना, उन्हें आज ठुकरा रहा है

खुदा जाने ये किसके नक़्शे-कदम है ?
कि सर बेइरादा झुका जा रहा है

समझता हूँ, झूठी क़सम खा रहे हो !
मगर किस कदर ऐतबार आ रहा है

ज़माने में अपना कहूँ किसको "माइल"
मेरा साया जब मुझसे कतरा रहा है

•••

---

१. अपूर्ण इच्छाओं का दुःख २. शीर्षक ३. लज्जित ४. अत्याचार मे परहेज

वह इंतजार की घड़ियां ! अरे मआज़ल्लाह[1] !
निगाहे-शौक[2] तरसती रही किसी के लिये

न जाने किस घड़ी उठ जाये उनकी चश्मे-करम,
जबीने-शौक[3] झुका ली है बन्दगी के लिये

सहर का वक्त है और शाम होने वाली है,
खुदा के वास्ते आ जाओ दो घड़ी के लिये

शऊरे अस्मते-हक[4] का मुकाम रखती है,
तेरी निगाह की जुम्बिश[5] मेरी खुदी के लिये

यह खुशनसीबी नही है तो क्या है ऐ ! "माइल",
कि, उनके जुल्मो-सितम कब हैं हर किसी के लिये

•

(२)

आप अपनी जफाओं पे पशेमान बहुत हैं
हम पर ये हुजूर आपके अहसान बहुत हैं

कहने को जमाने में तो इन्सान बहुत हैं
इन्सा की मगर शक्ल मे शैतान बहुत हैं

शिकवों की जुबाँ को वह समझ लेंगे कहाँ से,
ऐ दिल! अभी कमसिन हैं, वो नादान बहुत हैं

दुनियां तेरे हालात संवरना नही आसा,
बदले हुए इन्सान से इन्सान बहुत है

कल तक जो जमाने में थे बाबस्त-ऐ-इशरत[6],
वो आज जुबूं हालो-परेशान[7] बहुत है

यह बहरे-मुहब्बत[8] है कही डूब न जाये !
कश्ती की खबर लीजिये तूफान बहुत है

१. खुदा की पनाह २. दर्शनों के लिए आतुर आँखें ३. सिर ४. पवित्रता ५. कंप, हरकत ६. ऐशो-आराम से बसर ७. बिगडी हालत ८ प्रेम सागर

ज़ख्मे जिगरो—दर्दे-दिलो—सोज़े—तमन्ना[1]
रूदादे-गमे-इश्क़ के उनवान[2] बहुत है

सदशुक्र वफ़ाओं का सिला मिल गया "माइल"
वोह क़त्ल मुझे करके पशेमान[3] बहुत हैं

•

(३)

न जाने ज़माना किधर जा रहा है
कि, इन्सान जीने से घबरा रहा है

यह होता रहा है, यह होता रहेगा
कोई आ रहा है कोई जा रहा है

अभी से ही तर्के-सितम[4] का इरादा
सितमगर यह कैसा सितम ढा रहा है

कभी जिनकी ठोकर में था ये ज़माना
ज़माना, उन्हें आज ठुकरा रहा है

खुदा जाने ये किसके नक़्शे-क़दम हैं ?
कि सर बेइरादा झुका जा रहा है

समझता हूँ, झूठी कसम खा रहे हो !
मगर किस क़दर ऐतबार आ रहा है

ज़माने मे अपना कहूँ किसको "माइल"
मेरा साया जब मुझसे कतरा रहा है

•••

१. अपूर्ण इच्छाओं का दु.ख २ शीर्षक ३. लज्जित ४. अत्याचार से परहेज

मु० यक़ीनुद्दीन 'यक़ीन'

शिक्षा—हाई स्कूल।

कोटा के उस्ताद शायर जनाब गुलाम मोईनुद्दीन 'मफ़्तूं' कोटवी के साहबजादे 'यकीन' यहाँ के उर्दू-अदब में एक अलग मकाम रखते हैं। शायरी इन्हे विरसे मे मिली है। आप बडी मेहनत तथा लगन से शेर कहते है। शायरी मे जदीद रुझान के हामी है।

"शेर कहना मेरी फ़ितरत है और मैं अपनी शायरी में मौजूदा हालात की अक्कासी करने की कोशिश करता हूँ।"

—*यकीन*

तीन गज़लें

(१)

इस ज़माने से मुझे दिल नही बहलाना है
मुझको इन चाँद-सितारो से परे जाना है

दिन दिखाती है हमे गर्दिशे-दौरां क्या-क्या,
जो हकीकत थी कभी आज वह अफ़साना है

साथ रखती है खिजां आलमे-फ़ानी[1] की बहार,
गुलिस्तां था ये कभी आज यह वीराना है

जानता ही नही कोई मुझे सूरत से 'यकीन',
सिर्फ सुनते है वो इस नाम का दीवाना है

•

---

१. नश्वर ससार

(२)

दिल मे अरमां ही नही कोई अक़ूबत[1] के सिवा
मेरा मस्लक[2] ही नही कोई मुहब्बत के सिवा

यूँ ही बदनाम किया आपकी साजिश ने मुझे,
मुझपे इल्जाम न था आपकी तोहमत के सिवा

आप ही सोचिए मज्लूम[3] भला क्या करते !
कोई सूरत ही न थी जब कि बगावत के सिवा

सुनके रुदादे-शबे-हिज्र[4] मुखातिब यूँ हुए,
तुमको आता ही नही कुछ भी शिकायत के सिवा

शेरगोई[5] की गराँ[6] राह पे चलते हो 'यकीन',
क्या मिलेगा तुम्हें इस राह मे शोहरत के सिवा !

•

(३)

तुम अपना दिल जो हारे हम भी तुम से जान हारे है
न समझो गैर हमको जानो-दिल से हम तुम्हारे है

कलाम अपना वह मानिन्दे-रुखे-अनवर[7] निखारे हैं,
है तशबीहें[8] गजब की और बला के इस्तिआरे[9] है

जरा काली घटाओ ! होश मे आओ !! इधर देखो !!!
तुम्हारी चाह में सहरा कई दामन पसारे है

किनारे ढूढने जाता है क्यो तूफान से बाहर,
अरे नादाँ ! इसी तूफान को तह मे किनारे है

'यकीन' आखिर ये क्यों सोचते हो तुम अकेले हो,
तुम्हारी ही तरह सब लोग देखो ! गम के मारे हैं

•••

---

१. पीड़ा २. उद्देश्य ३. पीड़ित ४. विरग रात्रि का हाल ५. कविता-पाठ
६. कठिन ७. सूर्य के समान ८. उपमायें ९, रूपक

शरीफ़ हुसैन 'आज़ाद'

सम्प्रति—अध्यापक, राजकीय माध्यमिक विद्यालय, कोटा।

कौमी शायर की हैसियत से नगर के उर्दू अदब मे अपनी पहचान करवाने वाले जनाब 'आज़ाद' साहब अवाम के दर्द को अपना दर्द समझते है। किसी दर्दमन्द के दर्द को लफ्जी जामा पहना कर शेरो मे कलम बन्द करना आपकी विशेषता कही जा सकती है।

आप वला के तरन्नुमरेज शायर हैं और बड़े-बड़े आल इंडिया मुशायरों मे शिर्कत फ़रमा कर नाम पैदा कर चुके हैं। आपके कलाम मे एक तरफ जमालियात पसेमन्जर होता है वही दूसरी तरफ एहसासात को छू लेने वाली दर्द भरी (मजलूमों की) फरियादें भी सुनाई देती है।

अपने कलाम मे पुख्तगी एवं सोज और बेहतरीन तरन्नुम के लिये जनाबे 'आजाद' हमेशा याद किये जाते रहेंगे।

दो गज़लें

(१)

कौन जाने किसे छोड़ेगी ये रुसवा करके
टाँक दो आज की तस्वीर को उलटा करके

बदला बदला सा जमाने का ये दस्तूरे-अमल,
एक दिन छोड़ेगा तहज़ीब को नगा करके

जेहने-इन्सां मे है इक गर्दे-ताअस्सुब[१] छाई,
नस्ले-इन्सानी को रख देगी ये धुन्धला करके

लाख बैठे रहो पर्दों मे छुपाये खुद को,
हम तुम्हें छोड़ेगे नजरों का तमाशा करके

चैन मिलता नही दुनियां मे किसी भी सूरत,
हम ने हर तौर से देखा है गुजारा करके

१. भेद-भाव की धूल

पास बैठो कि सिखायें तुम्हें जीने की अदा,
बच सकोगे कहाँ खौफे-गमे-दुनियाँ करके।

हाय ! कल दम जो भरा करते थे अपनेपन का,
आज वो चल दिये क्यूंकर मुझे रुस्वा करके।

हमने सींचा है मुहब्बत के चमन को "आजाद",
खूने-दिल, खूने-जिगर, खूने-तमन्ना करके।

•

(२)

न ढूंढिये नगर नगर हमारे दिल से पूछिये,
हयात क्यूं है मुन्तशर[१] हमारे दिल से पूछिये।

जो दावादार आज हैं हमारी रहनुमाई के,
हैं इनमें कितने राहबर हमारे दिल से पूछिये।

कभी वो मौत बन गई, कभी हयात हो गई,
है क्या किसी की इक नजर हमारे दिल से पूछिये।

सुकूने-रूहो-कल्ब[२] की तलाश में हुजूर हम,
फिरे हैं कितने दर बदर हमारे दिल से पूछिये।

है हेच[३] दैरो काबा की यहाँ तमाम अजमतें,[४]
है क्या ! किसी का संगेदर हमारे दिल से पूछिये।

है शोलाबार हर नफस[५] झुलस रही है जिंदगी,
सभी यहाँ हैं नौहागर[६] हमारे दिल से पूछिये।

किसी को क्या पड़ी के वो किसी का हाल पूछ ले,
मरीज खुद हैं चारागर हमारे दिल से पूछिये।

नफस-नफस अजाबे-जाँ,[७] कदम कदम इताबे-गम,[८]
जिये हैं कैसे उम्र भर हमारे दिल से पूछिये।

•••

---

१. अस्त-व्यस्त २. आत्म-संतुष्टि ३, व्यर्थ ४. बड़प्पन ५. क्षण
६. दुःखी-व्यथित ७. हृदय पीड़ा ८. कोप भाजन

अब्दुल ग़फ़ूर खाँ 'शाकिर' बुरहानवी

जन्म—१६३६

हालात से मुतास्सिर होकर शेर कहने वाले 'शाकिर' बुरहानवी कोटा के मकामी स्कूल मे उर्दू के टीचर की हैसियत रखते है। वैसे तो, शेर कहना इनकी फितरत है, कलाम मे पुख्तगी के लिये काजी तमद्दुक मुहम्मद साहब 'मन्जर' से इस्लाह लेते है।

"मुझे उर्दू-अदब से बचपन से ही गहरा लगाव रहा है। कोटा के अदबी माहौल ने मुझे शेर कहने की सलाहियत दी जो अब भी बरकरार है। शायरी के जरिये हालात की अक्कासी करने का प्रयास करता हूं। कहां तक कामयाब हूं ! यह मेरे कलाम से अन्दाज लगाया जा सकता है।"

—शाकिर

तीन नज़्में

मुफ़लिसों की आवाज़

(१)

उठो ! सोये हुए जज्बात जगाने के लिये,
देश को अपनी बुलन्दी पे चढाने के लिये।

रास्ता सीधा जमाने को दिखाने के लिये,
रस्मे-दुनियां की खुराफ़ात मिटाने के लिये।

हमदमों तुम मेरे हमराह खड़े हो जाओ,
जुल्म की सख्त फ़सीलों[1] को गिराने के लिये।

---

१. दीवारें

हाथ में अपने सदाकत[१] का अलम[२] ले के उठो !
अपनी आवाज जमाने को सुनाने के लिये।

ऐसी पुरमोज सदा हो कि फजा गूंज उट्ठे,
आस्मानों से जमीनो को मिलाने के लिये।

तुख्म[३] नफरत का मिटा डालो चमन से अपने,
फल मुहब्बत का जमाने को चखाने के लिये।

जगमगा उठो ! कमर[४] और सितारो की तरह,
शबे तारीक जमाने की मिटाने के लिये।

मेरी आवाज को आवाज न ऐसी समझो,
जो हुआ करती है दुनियां को लुभाने के लिये।

ये सदा है कई मजलूम[५] दिलों की आवाज,
जो उट्ठी है किसी जालिम को सुनाने के लिये।

नाज है मुझपे जमाने को, जमाने पे मुझे,
ये जमाना है मेरा, मैं हूँ जमाने के लिये।

इस जमाने मे अमीर और गरीबों का सवाल,
सख्त अफसोस की बात है जमाने के लिये।

कोई बगलो में शिकम सैर[६] है बैठा,
कोई मुफलिस है, तरसता है जो दाने के लिये।

मुफलिसों ही की है आवाज उस आवाज के साथ,
उठा 'शाकिर' है जिसे तुमको सुनाने के लिये।

•

(२)

गर्दिशें बदलो

उठो ! जमाना-ऐ-रंगी[७] की शोरिशें[८] बदलो,
निशातो-ऐशो-तरब[९] की ये महफिलें बदलो।

---

१. सच्चाई २. प्रचार ३. बीज ४. चांद ५. पीड़ित ६. भरे पेट
७. रंग-बिरंगी दुनियां ८. उन्माद, पागलपन ९. आराम, खुशहाली

न बदलो राह गुज़र और न मंजिलें बदलो,
अमीरे-कारवाँ रहरो[1] की लगजिशें[2] बदलो।

जहाँ के साथ बदलने से खुद को क्या हासिल,
मजा तो जब है, जमाने की गर्दिशें बदलो।

मिटा दो शेखो-बरहमन[3] का फर्क दुनियाँ से,
जहाने-फानी से मजहब की बंदिशें बदलो।

न छूट जाये कही तुमसे सिद्क[4] का दामन,
हजार बार जमाने की गर्दिशें बदलो।

बदल दिये कई जामो-सुबू[5] तो क्या साकी !
कमाल जब है कि रिन्दो[6] की आदतें बदलो।

न रखो गैरो के ग्रहवाल[7] पर नज़र 'शाकिर',
बदल सको तो खुद अपनो की हालतें बदलो।

•

(३)

जिकरे-गम उनको सुनाये तो बगावत होगी,
जख्मे-दिल अपने दिखायें तो बगावत होगी।

कहकहे गैर लगायें तो कोई बात नही,
हम तबस्सुम कभी लायें तो बगावत होगी।

हाल पर अपने जो रोये तो बुरा लगता है,
रोने वालों को हँसायें तो बगावत होगी।

उनके हर जुल्म को ऐ दोस्त ! सहे जाते हैं,
अपनी आवाज उठायें तो बगावत होगी।

---

१. मार्ग-प्रदर्शक २ गल्तियाँ ३. हिंदू-मुसलमान ४. सच्चाई
५. सुराही एव प्याले ६. पीने वाले ७. हालात, समस्यायें

वादे, उल्फ़त के सभी करके वो अब भूल गये,
उनको गर याद दिलायें तो बगावत होगी।

देखकर वक़्त के हालात परीशाँ है हम,
लब पे शिकवा कभी लायें तो बग़ावत होगी।

जश्न दुनियाँ मे तो सब अपने मनाये 'शाकिर',
हम जो मातम भी मनायें तो बगावत होगी।

•••

अब्दुल रऊफ़ 'अख़्तर'

जन्म— १६५५

शिक्षा—हायर सैकेन्डरी (अदीब कामिल)

जनाब रऊफ 'अख्तर' कोटा के मकामी स्कूल मे उर्दू टीचर की हैसियत रखते है। नौ-उम्र शायरो में आपने एक ख़ास मकाम बना लिया है।

शायरी मे नये से नये ख्यालात लाने का प्रयास करते है और इसके प्रति पूर्णत. जागरूक है।

तीन गज़लें

(१)

कर्ब[1] मे डूबा हुआ शहर का मन्ज़र होगा,
जब हर एक शख्स लिए हाथ मे खन्जर होगा।

क्या ख़बर थी कि मेरे हाथ मे पत्थर होगा,
और निशाना भी मेरा अपने ही सर पर होगा।

राहबर जिसको समझता था ज़माना अपना,
किस को मालूम था वो राह का पत्थर होगा।

अपने पैरों मे कुचल आये है सब लोग जिसे,
एक दिन वो ही ज़माने का मुकद्दर होगा।

ज़हर पीने का अगर जिक्र चला तो "अख्तर",
अपनी महफ़िल का हर एक फर्द[2] ही शंकर होगा।

•

---

१. दुःख २. व्यक्ति

(२)

बरसों की कोशिशो से तो यकजा[1] हुआ था मैं,
देखा खुली जो आँख तो बिखरा हुआ था मैं ।

दो राहे पे हयात के उलझा हुआ था मैं,
गोया किसी सलीब पे लटका हुआ था मैं ।

उस वक़्त 'खिज्र'[2] ने भी मेरा साथ न दिया,
मंज़िल की जब तलाश मे भटका हुआ था मैं ।

नाकाम मेरी सारी तदाबीर[3] हो गई,
शातिर की ऐसी चाल मे उलझा हुआ था मैं ।

"अख्तर" वो हादसा न कभी भूला जायेगा,
जो उनकी अन्जुमन का तमाशा हुआ था मैं ।

•

(३)

बुगजो-कीना[4] को, कुदूरत[5] को मिटा कर देखो,
प्यार की शम्अ जमाने मे जलाकर देखो ।

तुम नसीहत तो किया करते हो सबको नासेह !
पहले अपने तो अमल नेक बनाकर देखो ।

राज पाने को सभी आयेंगे बेताब नजर,
अपने होठो मे कोई बात दबाकर देखो ।

बर्को-बारां[6] के मुकाबिल भी खड़े हो जाना,
पहले गुलशन में नशेमन तो बना कर देखो ।

गैर मुमकिन है मिले तुम को खुदा पत्थर मे,
लाख तुम फूल अकीदत के चढा कर देखो ।

कोई मुश्किल नही मंज़िल पे पहुँचना "अख्तर"
अज्मो-हिम्मत[7] से जरा पाँव उठाकर देखो ।

○○○

---

१. सिमटा २. भटके हुओ को राह दिखाने वाले पैगम्बर ३. कोशिशें
४. बुरी आदतें ५. ईर्ष्या ६. वर्षा-तूफ़ान-बिजली ७. साहस का इरादा

रज़ा मुहम्मद 'रज़ा'

जन्म—१९५४

हसीन तरन्नुम के बाइस पहचाने जाने वाले शायर मुहम्मद 'रज़ा' आज के जदीद दौर में भी अपनी रिवायत को बरकरार रखते हैं। आपकी रचनाओ मे सौंदर्य वर्णन बखूबी पाया जाता है। प्रकृति की देन मधुर-कंठ सोने पे सुहागा का सा काम करता है।

"मैं फितरतन शेर कहता हूँ और अपनी ज़िन्दगी को शायरी में ढालने की कोशिश करता हूँ। यही मेरा मक़सद है।"

—रज़ा

तीन ग़ज़लें

(१)

इशरते-ज़ीस्त[१] से दामन को बचाकर देखो,
अपनी पलको पे सितारे भी सजाकर देखो।

कैफ़ियत दिल की सिमट आयेगी आँखो मे अभी,
अपने होठो मे कोई बात दबाकर देखो।

ख़त्म इस तरह तअस्सुब[२] का अंधेरा होगा,
शम्मे-इख़लासो-वफ़ा[३] दिल में जलाकर देखो।

शायद इस तरह वह माइल बकरम[४] हो जाये,
हुस्ने-मग़रूर[५] को अहसास दिलाकर देखो।

हमने माना कि बलानोश[६] है ज़ाहिद लेकिन,
मस्त आँखों से भी कुछ इसको पिलाकर देखो।

---

१. जीवन-सुख २. घृणा-भाव ३. प्रेम का दिया ४. कृपा भाव
५. घमंडी रूप ६. पियक्कड़

ज़ुल्मते-वक़्त[1] भी सर फोड़ेगी दीवारो से,
इक दिया ऐसा मुहब्बत का जलाकर देखो।

खुद ब खुद अब्रे-करम[2] जोश में आ जायेगा,
ऐ "रजा" अब बहरे दुआ हाथ उठाकर देखो।

•

(२)

है इन्तिजारे—आमदे—फस्ले—बहार[3] भी।
दीवाने कर रहे है तेरा इन्तजार भी।

गुलशन उजड़ गया गई फ़स्ले-बहार भी,
वो अपने साथ ले गये सब्रो-करार भी।

रो-रोके वो मरीजे-गमे-हिज्र[4] सो गया,
सदियो से कर रहा था तेरा इन्तजार भी।

पैराहने-हस्ती[5] को रफू भी तो किया है,
ऐ जोशे-जुनूं ! कर दे इसे तार-तार भी।

कोई भी शरीके-गमो-आलाम[6] नही है,
दुनियाँ में नही कोई मेरा ग़मगुसार[7] भी।

यह और बात है कि नशेमन बना लिया,
रहना है इस चमन में तुम्हे होशियार भी।

नफ़रत थी जिसको तुझसे तेरी ज़ात[8] से "रजा",
तुझसे लिपट गया वही दीवानावार भी।

•

---

१. समय का अंधेरा २. ईश्वर-कृपा ३. खुशनुमा मौसम की प्रतीक्षा ४. विरही ५. जीवन रूपी वस्त्र ६. दुःख मे साथ देने वाला ७. पीडा को समझने वाला ८. अस्तित्व

आपको शिकवा तगाफुल[1] का कभी होता नही।
दिल की मजबूरी का आलम आपने देखा नहीं।

कौन सुनता है किसी के रजो-गम की दास्तॉं,
इसलिये ऐ दोस्त ! तुझसे कोई भी शिकवा नही।

भूख, बेकारी, गरीबी मुफलिसी का दौर है,
आज भी खुशहाल अपने देश की जनता नही।

जो सिपाही सरहदो पे लडते-लडते मर गये,
उन शहीदाने-वतन का कोई भी चर्चा नही ?

ख्वाबे-गफलत से जगा देता है शायर का पयाम,
जहने-शायर जाग उठता है तो फिर सोता नही।

क्या हमारा दिल शऊरे-दाद[2] के काबिल न था,
गम से पत्थर हो गया लेकिन कभी रोया नही।

बिजलियो ने सहने-गुलशन मे मचा रखी है धूम,
बागबॉं ने ऐ "रजा" अब तक उधर देखा नही।

•••

---

१. लापरवाही २. प्रंशसा-पात्र

अब्दुल अजीज़ 'ताज'

जन्म—२३ जुलाई, १६५०
शिक्षा—हाई स्कूल
सम्प्रति—उर्दू शिक्षक, कोटा।

कोटा की अदबी नशिस्तो मे एक जाने-माने नौजवान शायर जनाब अब्दुल अजीज़ 'ताज' को बचपन से ही उर्दू से खास लगाव रहा है। आपने पेशा भी पढने-पढाने वाला ही अख्तियार किया। शायरी मे जदीद रुझान के हामी हैं। शायरी आपके नजदीक महज़ खाली वक्त का शगल नहीं है। वक़्त के मिजाज़ में आने वाले फर्क पर बराबर निगाहे जमाये रहते है, लोगों को आगाह करते हैं। आवाम के खिलाफ होने वाली जालसाज़ी कही खुशहाली के सपने लूट न ले, इसलिये अपनी शायरी से लोगो को जगाते रहते हैं, होशियार करते है, एक खूबसूरत 'कल' के लिये हर तरह की तकलीफ उठाने का हौसला बुलन्द करते रहते हैं।

ग़ज़ल

अब तो ख़ारों को भी सीने से लगाना होगा।
इस तरह कर्ज़ बहारों का चुकाना होगा।

सारी दुनियाँ से तशद्दुद[1] को मिटाने के लिए,
रंग और जात[2] की तफ़रीक़[3] मिटाना होगा।

राहज़न लूट न ले हमको बयाबाँ में कोई,
हर नये मोड़ पे अब शमआ जलाना होगा।

तुमको मंज़िल पे पहुँचने के लिए आज सुनो !
इन खतरनाक गुज़रगाहों से जाना होगा।

मुझको मंज़िल का पता 'ताज' बताने के लिए,
चाँद-तारो को मेरे साथ मे आना होगा।

●●●

१. अत्याचार २. जात-पात ३. भेद-भाव

शुजाउर्रहमान खान 'फ़ज़ा' अज़ीज़ी टोंकी

जन्म—८ जून, १९३९

सम्प्रति—सेल्स टैक्स विभाग, कोटा में कार्यरत।

'फजा' अजीज़ी की पैदाइश जिला टोंक की उस सरजमी से है जो कुछ अर्से पहले इल्मो-फन का गहवारा और मरकज़ थी तथा जिसकी झलक आज भी मिलती है। शायरी का माहौल होश सभालते, घर में ही मिल गया। तालिब इल्मी के जमाने में आप वालिद साहब मरहूम जनाब अजीजुर्रहमान खान 'अजीज़' की सलाह के कारण शायरी के शौक को पूरा नहीं कर सके। फिर भी, बाद में उर्दू, हिन्दी, फारसी तथा इंगलिश की तालीम पाकर चन्द सनदें हासिल की और अपने शौक को भी पूरा किया।

आपने, अपने रिश्ते के नाना मरहूम साहबज़ादा यासीन अली खान 'निशात' साहब को अपना उस्ताद बनाया। और उनकी सोहबत में अपने फन को कलात्मक ढंग से निखारा।

जनाबे-'फ़ज़ा' एक उम्दा गज़लगो शायर हैं। अपनी 'बात' बड़ी ईमानदारी से कहते हैं जो सीधी दिल पर असर करती है। रिवायती तश्बीहात के इस्तेमाल के बावजूद भी आपकी शायरी रोज़मर्रा के तजुर्बात को अपना मौजू बनाती है।

क़तआत

अफ्लाक[1] की गर्दिश पैहम[2] है
माइल बसितम यह आलम है
कर हिम्मत ना-उम्मीद न हो,
उम्मीद पे दुनियाँ कायम है

•

---

१. आकाश समूह २. लगातार परेशानियाँ

कफस से बुलबुले-नालाँ भी आज छूट गया
किसी का दामे-असीरी सदा से टूट गया
"फ़ज़ा" उम्मीद थी फ़स्ले-बहार आने की,
बहार आई तो हर गुल में खार फूट गया

•

दो ग़ज़लें

(१)

रही शोरिशें[1] जारी बर्क़-ओ-शरर[2] से।
तो फिर शोले उठेंगे हर शाखे-तर से।

जो हो सख्ततर संगे-दर अपने सर से,
तो, घिसना है बेकार सर सगे-दर से।

चरागाँ जो गुलशन में करना ही ठहरा,
तो फिर सोचना क्या शुरू हो किधर से।

जो पाबंद हो मरजिये-बागवाँ के,
भला फायदा क्या है उन बालो-पर से।

मुकद्दर है जब अपना तारीकियों[3] में,
हमे वास्ता क्या है शब से, सहर से।

शबे-गम के मारे न घबरा, न घबरा,
सरकने को है ज़ुल्फ़े-शब अब कमर से।

रहा ऐ! 'फज़ा' फ़ैज़े-आम[4] उनका सब पर,
और हम इक निगाहे-करम को भी तरसे।

•

१. कारगुजारियाँ २. बिजली और स्फुलिंग, चिंगारी ३. अंधेरे
४. कृपा दृष्टि

कादिराना[1] फिर हुआ बारे निगाहे-वापसी।
फिर लबे-खञ्जर से निकली हैं सदाऐं आफ़री[2]।

दी मुहब्बत तूने और ली जान ऐ जान आफ़री !
उसपे ये तुरफ़ा-तमाशा तू कहीं और मैं कहीं।

हम समझते थे कि ये तो होंगे वजहे-जिन्दगी[3],
जान लेवा बन गये अंदाजे-जाना हमनशीं।

नज्दे-मगरिब[4] मे हुआ बेहोश जब मजनूने-रोज़[5],
खोल दी लैला-ए-शब[6] ने अपनी जुल्फें-अबरी[7]।

जान कर आसां कभी जिनपे हुये थे गामज़न,
हैफ ! वह राहें बहुत दुश्वार अब साबित हुईं।

आज तो यह कर रहे हैं होश की बातें जनाब,
मिल गया है कोई सागर शेख साहब के तईं।

लनतरानी तूर[8] पर बेसाख्ता फरमां दिया,
और उदनू मिन्नी[9] की सदा आई सरे-अर्शे-बरी।

हाशिये इसके बहरसूरत मुरत्तब[10] हो गये,
और तफ़सीरें,[11] किताबें इश्क की लिखी गईं।

आज हर एक को है फिक्र आसूदा-ए-मंजिल[12] बनूं,
किस तरह मिलती है मंजिल ये कभी सोचा नहीं।

आस्मां की तरह से जो लोग थे सायाफ़िगन[13],
कौन कह सकता है उनका क्या हुआ जेरे-जमीं[14]।

फिर नजर आने लगे सामाने-बरबादी "फ़ज़ा",
फिर किसी की याद दिल मे हो रही जा गुज़ीं[15]।

• • •

---

१. असरदार २. धन्यवाद की सदा ३. जिंदा रहने का बहाना ४. पश्चिम में ५. मजनूं रूपी दिन ६. लैला रूपी रात्रि ७. सुगंधित केश राशि ८. वह पर्वत जहां मूसा अली सलाम को ईश्वर ने दर्शन दिये ९. साक्षात दर्शनों की इच्छा १०. क्रम बद्ध ११. महाभाष्य १२. लक्ष्य के प्रति सतुष्ट १३. फैले, छाये हुए १४. पृथ्वी के नीचे (पाताल) १५. पसंद

जमुनाप्रसाद ठाड़ा 'राही'

जन्म—१ नवम्बर, १६१२

शिक्षा—बी. ए., बी. एड.

सम्प्रति—शिक्षा निरीक्षक के पद से अवकाश प्राप्त ।

आयु में वृद्ध किन्तु उत्साह और उमग में नवयुवकों को पीछे छोडने वाले श्री ठाडा 'राही' इस नगर के जाने माने वयोवृद्ध साहित्यकार है । आयु के उत्तरार्द्ध में लेखन प्रारम्भ किया और बहुत तेज लिखा । हिन्दी तथा हाडौती में सभी विधाओं में रचनाएं । एक काव्य सग्रह "खुगाळी" प्रकाशित ।

"जीवन ने बहुत कुछ सिखाया किन्तु हर ताजे अनुभव को घर लौटकर यहां-वहां टांग दिया या किसी आले-कोले में रख दिया । क्षणों में एकान्त अनुभवों पर से धूल की परतें झाड़ीं, उन्हें पुनः सहेजा और पाया कि इनकी 'अपील' को माध्यम देना आवश्यक है । साथी बृजेन्द्र कौशिक की प्रेरणा से इस माध्यम के रूप में लेखन प्रारम्भ किया, अब भी इसी क्रम में लेखन प्रक्रिया में रत हूँ ।"

—'राही'

छः गजलें

(१)

कलम चाँदणूं जद छट'क छ',
अंधियारो डर'क सट'क छ' ।

जीव कतरणी चा'ल कतनी,
साँची कहतां पँण ग्रट'क छ' ।

गूगा – बहरा बैठ्या – बैठ्या,
मूँग छाजळा में फट'क छ' ।

जादू सो हो जा'व छ' जद,
मँचाँ प' देवी मट'क छ' ।

बलिहारी छ' यां मनख्यां की,
जहर पियालो नँत गट'क छ' ।

लदी खजूर्‌यां यां ऊँटां की,
आंख्यां में कतनी खट'क छ' ।

कफन बांधल्या ज्यां नें मा'थ,
बन्दूक्यां सूं कद ठठ'क छ' ।

अन्यायी सूं कर मुठभेड़ां,
जालम नें पहल्यां झट'क छ' ।

देस बावळा तो फांसी का,
फँदा प' हँस'क लट'क छ' ।

नई रोसनी में भी 'राही',
भठी उठी तू क्यूं भट'क छ' ।

•

(२)

दर्द माथा प' चढ जो बो'ल छ',
यो ही आंख्यां मनख की खो'ल छ', ।

दर्द नें सुण क' नँपट भाटो भी,
मोती पलकां सूं घणां ढो'ळ छ' ।

दर्द की सुइयां चुभे रग-रग में,
गजब यो आदमी क' सो'ल छ' ।

एक करसो छ' भापड़ो भोळो,
खेत में खूं-पसीनों घो'ळ छ' ।

सेठ कळजुग में देवता बणग्या,
खून पी'व छ', मांस तो'ल छ' ।

जादू सो हो जा'व छ' जद,
मैंचाँ प' देवी मट'क छ' ।

बलिहारी छ' याँ मनख्याँ की,
ज़हर पियालो नंत गट'क छ' ।

लदी खजूर्‌याँ याँ ऊँटाँ की,
आँख्याँ में कतनी खट'क छ' ।

कफन बाँधल्या ज्याँ नैं मा'थ,
बन्दूक्याँ सूँ कद ठठ'क छ' ।

अन्यायी सूँ कर मुठभेड़ाँ,
ज़ालम नैं पहल्याँ झट'क छ' ।

देस बावळा तो फाँसी का,
फँदा प' हँस'क लट'क छ' ।

नई रोसनी में भी 'राही',
अठी उठी तू क्यूँ भट'क छ' ।

•

(२)

दर्द माथा प' चढ़ जो बो'ल छ',
यो ही आँख्याँ मनख की खो'ल छ', ।

दर्द नैं सुंण क' नैंपट भाटो भी,
मोती पलकाँ सूँ घणाँ ढो'ळ छ' ।

दर्द की सुइयाँ चुभे रग-रग में,
गज़ब यो आदमी क' सो'ल छ' ।

एक करसो छ' भापड़ो भोळो,
खेत में खूँ-पसीनों घो'ळ छ' ।

सेठ कळजुग में देवता बणग्या,
खून पी'व छ', माँस तो'ल छ' ।

एक दँन हो'व तो दर्द नँ पीव्यां,
छोलणां यो तो नुवा छो'ल छ' ।

जीभ आपां की कोई जद सी'द,
भापड़ी आंख बसक रो'ल छ' ।

मूंन को कद इलाज हो पायो,
मूंन तो मोत 'राही' हो'ल छ' ।

•

(३)

कलमां में जद हाय जगी छ',
बस्ती-बस्ती लाय लगी छ' ।

अर्थ बावळी ईं दुनियां में,
कतनी चोरी-लूट-ठगी छ' ।

म्हारा भी घर में काळी सी,
देवी की तस्वीर टँगी छ' ।

भीड़ देख'क चोराया प',
ऊँटां की इक फौज भगी छ' ।

देस बावळां की छात्यां में,
सडक्यां प' बन्दूक दगी छ' ।

जन-विरोध सूं लोकतन्त्र की,
डगमग-डगमग नाव डगी छ' ।

कलमां क' रस्ता में आया,
'राही' व्हां की दूब उगी छ' ।

(४)

दर्द की मार्‌या मरां छां,
तो भी हां में हां करां छां ।

जीभ गहणै मेल दीनी,
आँख प' पाटी धरां छां ।

प्यास पाणी पी बुझाल्यां,
पेट में भाटा भरां छां ।

छ' अचम्भो आदमी हो,
घांस सपनां में चरां छां ।

बा'र कतनां न्हार छां पंण,
साफ कहबा में डरां छां ।

दुःख की लांबी पानडी नैं,
जेब में धर'क फरां छां ।

लाख सौगनैं खा लिया पंण,
फेर कूवा में गरां छां ।

झूंठ को जैकार कर'क,
'राही' बैतरणी तरां छां ।

•

(५)

कलम नैं च'ल जद गजल कांईं मांडूं ।
नैं आंखर म'ल जद गजल कांईं मांडूं ।

सेठां की बस्ती में धरती प' सूता,
मैंनखड़ा त'ळ जद गजल कांईं मांडूं ।

चांदी की खटिया प' आंधी का घर में,
गैंडकड़ा पळ' जद गजल कांईं मांडूं ।

सिल्या होठ छ' पंण पलकां में आया,
बसकड़ा ढु'ळै जद गजल कांईं मांडूं ।

जवानां नैं रस्तो बताऊँ तो उल्टी,
मसखरयां र'ळ जद गजल कांईं मांडूं ।

उघाड़ो उवाणूं फरूँ मँझ दुपहरी,
पगतळ्यां वळ' जद गजल काँई मांडूं।

फटी गोदडी में कट' चल्लो जाडो,
टपोर्‌या गळ' जद गजल काँई मांडूं।

अंधेरी गुवाड़ी में मीलँण-घुटँण हो,
नें दियो जळ' जद गजल काँई मांडूं।

कई बार कागद नें लिख 'राही' फाड़ूं,
या स्याही छळ' जद गजल काँई मांडूं।

•

(६)

काँई मांडूं कलम रुकी छ'।
होठां प' इक कील ठुकी छ'॥

ऊँटां-घोड़ां का पहरां में,
देवी की तस्वीर ठुकी छ'।

थांका स्वारथ की चतरायां,
सारी खड़क्यां जांण चुकी छ'।

रेळा—सेळा पोचारा सूं,
उल्टी दूणीं आग धुकी छ'।

म्हा'र सामें ही सडक्यां प',
छात्यां में संगीन भुंकी छ'।

बन्दूक्यां तो म्हां'क भी पँण,
यांनें अपणो जांण झुकी छ'।

थोड़ा दँन ही याद र'हगी,
बारखड़ी जो आज घुकी छ'।

अंगारा 'राही' चेत'गा,
या तो कोरी राख फुंकी छ'।

•••

सूरजमल विजय

जन्म—१० जुलाई, १६३४
शिक्षा—बी. कॉम.
सम्प्रति—व्यवसाय ।

हाड़ौती क्षेत्र के जुझारू कवि के रूप मे जाने-माने विजय जी श्री श्याम नारायण पाण्डे तथा श्री सोहनलाल द्विवेदी के स्कूल के कवि हैं। दो खण्ड काव्य—"बरदा चम्बल" (हिन्दी) तथा "रणत भंवर का बोलता भाटा" (हाड़ौती) एवं एक कविता संग्रह—"वाणी वरदान" प्रकाशन की प्रतीक्षा मे। आकाशवाणी तथा अखिल भारतीय कवि सम्मेलनो मे सादर बुलाये जाते रहते है।

"हमारे इतिहास के पुंसत्व का पुनः साक्षात्कार हम जब तक नहीं करेंगे हम हीन भावना से ग्रस्त रहेंगे। मैं इस साक्षात्कार के सेतु निर्माण के लिए कटिबद्ध हूँ। कविता मेरा 'टूल' है।"

—सूरजमल

कदो न होगा साँचा सपणाँ

पाणी बना तसायो पणघट, हाँस छ' मरघट की ज्वाला,
अ'र बसन्ती दारू पीग्या, पतझड का रागस मतवाळा।
कोयल की मीठी बाणी नँ, नँगळी छी पेडाँ की डाळी,
मच्छर्‍याँ की रुँखाळी ब'ठी, बगलाँ की पगत मतवाळी।
घर का भेदी लंका ढा'व, कस्याँ पराया होग्या अपणाँ,
खबा, करबा मँ अन्तर छ', कदी न होगा साँचा सपणाँ।

कागद का खेताँ मँ लह'र, अकाँ की बळखाती फसलाँ,
खल्लाणाँ रीता का रीता, हजम कर' खेताँ की नसलाँ।
मँडी मोरडी हार नँगळगी, आ दूब सूख गी बागाँ की,
मान सरोवर मँ आ पूगी छ' अब तो टोळी कागाँ की।
हर कोई दोस लगा'व छ', नीति-धरम की लागी रटणाँ,
खवा-करबा मँ अन्तर छ', कदी न होगा साँचा सपणाँ।

●●●

शिवराम

क्यूँ धरती प' छ' रात

सुँण भाई सुँण !
म्हाँकी भी बात सुँण
पूछूँ छूं इक बात
दीजो थाँ जुवाब
जद छ' आसमाँ में सूरज
क्यूँ धरती प' छ' रात ?

चार आना को जर्दो, दो आना को पात
थोड़ो घणो तागो लाग', बाकी थारा हाथ
क्यूँ रुप्या-आठ आना सेठ खाव'
क्यूँ दो पीस्या था'र हाथ ?
जद छ' आसमाँ में सूरज क्यूँ धरती प' छ' रात—

थाँ भी आया, ऊ भी आयो, दोन्यूँ खाली हाथ
ऊँक' होग्या बंगला-गाडी थाँ'क खाली हाथ
क्यूँ तू खावँ काळी रोटी, क्यूँ ऊँ'क धोळो भात ?
जद छ' आसमाँ में सूरज/क्यूँ धरती प' छ' रात—

अल्ला-ईसर सबकी भाया माया अपरम्पार
ऊ'नँ बक्सी जन्नत सारी, दोजख थाँक' द्वार
यो कस्यो न्याय क'र छ', जग को पालणहार
जो काट' छ' नित नयी गर्दन ऊँई दे उपहार !
जद छ' आसमाँ में सूरज/क्यूँ धरती प' छ' रात—

सीधो सो सुवाल छ', सीधो ही छ' जुवाब
दो दुनिया छ' ईं धरती प', दोन्यू की न्यारी बात
इक दुनिया में अमर'त बरस'
और दूजी दुनिया में आग

ऊँक आसमाँ में छ' सूरज
यूँ म्हाँकी धरती प' रात ?

जद सूरज उग'गो, म्हाँक' आसमाँ कट ज्यागी रात
सब जन मिल-जुल हो तैयार
काटाँ अंधियारो, काटाँ रात
सूरज उग' आसमाँ होव' लाल प्रभात !!

.. ..क्यूँ धरती प' छ' रात............

• • •

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
२०	१०	हमरी	हमारी
२१	१३	दु-पहरी	दुपहरी
२६	१५	रेखायें	रेखा पे
४७	४	मिनुसारे	भिनुसारे
६२	२३	लिवांस	लिबास
८४	११	गजल	गज़ले
९३	३	ज़ैन	जैन
११५	५,६	जुलमत	ज़ुल्मत
१३१	१४	खदबख़ुद	ख़ुदबख़ुद
१३५	२१	विरग	विरह